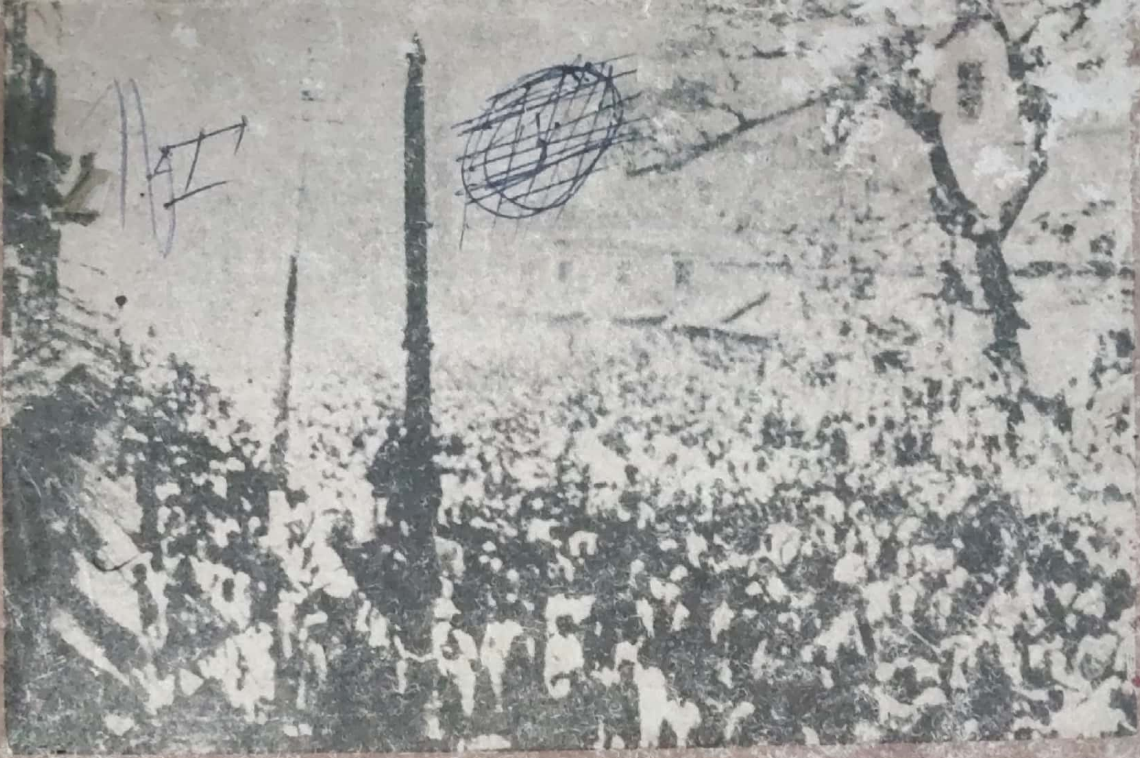

आधुनिक भारत

कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक

Scanned with CamScanner

विषयानुक्रम

प्राक्कथन v

अध्याय : 1

अठारहवीं सदी का भारत 1

अध्याय : 2

भारत में यूरोपीयों का प्रवेश और अंग्रेजों की विजय 31

अध्याय : 3

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीतियां 56

अध्याय : 4

प्रशासनिक संगठन और सामाजिक तथा सांस्कृतिक नीति 71

अध्याय : 5

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण 84

अध्याय : 6

1857 का विद्रोह 92

अध्याय : 7

1858 के बाद प्रशासनिक परिवर्तन 108

अध्याय : 8

ब्रिटिश शासन आर्थिक प्रभाव 124

अध्याय : 9

नए भारत का उदय : राष्ट्रीय आंदोलन 1858-1905 136

अध्याय : 10

नए भारत का उदय : 1858 के बाद धार्मिक और सामाजिक सुधार 151

अध्याय : 11

राष्ट्वादी आंदोलन 1905-1918 166

Scanned with CamScanner

अध्याय : 12
स्वराज्य के लिए संघर्ष : I 191

अध्याय : 13
स्वराज्य के लिए संघर्ष : II 208

(1) सिख - गुरु गोविन्द सिंह → बंदा बहादुर
(2) मराठा — साहू + ताराबाई
(3) चूड़ामन ने बंदा बहादुर के खिलाफ अभियान में बादशाह का साथ दिया
(4) दक्कन का चौथ — जुल्फिकार खाँ
(5) केवल बंदा और सिखों के प्रति दमन की नीति अपनाई
(6) इजारा से किसानों का उत्पीड़न बढ़ा
(7) इजारा — जुल्फिकार — जहाँदार
(8) आमेर = जयसिंह → विजयसिंह
(9) मारवाड़ = अजीत सिंह
(10) बुंदेला सरदार — छत्रसाल
(11) जाट — चूड़ामन
(12) बादशाह द्वारा अंधाधुंध जागीरें देने तथा पदोन्नति करने के फलस्वरूप राज्य की वित्तीय स्थिति और खराब हो गई
(13) जजाओ - 1707 - मुअज्जम ने आजम को हराया
(14) यह अन्तिम मुगल सम्राट था, जिसके बारे में कुछ अच्छे शब्द कहे जा सकते हैं — सिडनी ओवन
(15) गुरदासपुर — बन्दा बहादुर — 1716
(16) हुसैन अली - बिहार, अब्दुल्ला — इलाहाबाद
(17) मीर जुमला - सैय्यद बन्धु का विरोधी
(18) मीर जुमला के शब्द और हस्ताक्षर मेरे शब्द और हस्ताक्षर हैं — फर्रुखसियर
(19) रतनचन्द — राजा — सैय्यद बन्धु
(20) एतमाद, सआदत, हैदर — हुसैन अली
हैदर ने भारतीय करबला में दूसरे यजीद ने दूसरे हुसैन को शहीद कर दिया
(21) औरंगाबाद — ... [illegible]
(22) हसनपुर — अब्दुल्ला
(23) शकूरखेड़ा — 1724 मुबारिज — निजाम
(24) सआदत खाँ, विष खाकर आत्महत्या की — 2 करोड़ ...
(25) नवाब वजीर — सफदरजंग
(26) अवध के राज्य की स्थापना — सआदत खाँ (बुरहानुल मुल्क)

Scanned with CamScanner

(1) 1803 — दिल्ली
(2) बहादुरशाह विजयी — आमेर + मारवाड़ ①
(3) सरदेशमुखी दी चौथ नहीं — मराठा
(4) गुरु गोविंद सिंह के साथ संधि, बुंदेला सरदार छत्रसाल, जाट सरदार चुरामन
(5) बंदा बहादुर
(6) मराठा सरदारों के प्रति उसकी नीति ऊपरी तौर पर ही मेल-मिलाप की थी, उसने साहू को मराठों का विधिवत राजा नहीं माना
(7) भीम — चुड़ामन — चुरामन, ने आत्महत्या कर ली
(8) बदन सिंह के चार दुर्ग — (1) दीग (2) कुम्हेर (3) वैर (4) भरतपुर
(9) अहमदशाह अब्दाली ने बदन सिंह को 'राजा' की उपाधि दी, जिसमें 'महेंद्र' शब्द भी जोड़ दिया

अध्याय : 1

अठारहवीं सदी का भारत

मुगल साम्राज्य का पतन

महान मुगल साम्राज्य अपने समय के अन्य साम्राज्यों के लिए ईर्ष्या का विषय था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान मुगल साम्राज्य का पतन और विघटन हो गया। मुगल बादशाहों ने अपनी सत्ता और महिमा खो दी और उनका साम्राज्य दिल्ली के इर्द-गिर्द ही कुछ वर्ग मील तक सीमित रह गया । अंत में, 1803 में दिल्ली पर भी ब्रिटिश फौज का कब्जा हो गया तथा प्रतापी मुगल बादशाह एक विदेशी ताकत का पेंशनयाफ्ता होकर रह गया ।

साम्राज्य की एकता और स्थिरता औरंगजेब के लंबे और कठोर शासन के दौरान डगमगा गई । फिर भी, उसकी अनेक नुकसानदेह नीतियों के बावजूद 1707 में उसकी मौत के समय मुगल प्रशासन काफी कुशल तथा मुगल फौज काफी ताकतवर थी। इसके अलावा देश में मुगल राजवंश की इज्जत कायम थी ।

औरंगजेब की मौत होने पर उसके तीनों बेटों के बीच गद्दी के लिए संघर्ष हुआ । इस संघर्ष में पैंसठ वर्षीय बहादुरशाह विजयी रहा । वह विद्वान, आत्मगौरव से परिपूर्ण और योग्य था। उसने समझौते और मेल-मिलाप की नीति अपनाई । इस बात के सबूत मिलते हैं कि औरंगजेब द्वारा अपनाई गई संकीर्णतावादी नीतियों तथा कदमों में से कुछ को उसने बदल दिया । उसने हिंदू सरदारों और राजाओं के प्रति अधिक सहिष्णुतापूर्ण रुख अपनाया । उसके शासनकाल में मंदिरों को नष्ट नहीं किया गया । आरंभ में उसने आमेर और मारवाड़ (जोधपुर) के राजपूत राज्यों पर पहले से अधिक नियंत्रण रखने की कोशिश की । इस उद्देश्य से उसने आमेर की गद्दी पर जयसिंह को हटाकर उसके छोटे भाई विजयसिंह को बिठाने और मारवाड़ के राजा अजीतसिंह को मुगल सत्ता की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर करने की कोशिशें कीं । उसने आमेर और जोधपुर शहरों में फौजी डेरा जमाने की कोशिश भी की । किंतु इसका कड़ा प्रतिरोध हुआ । शायद इसी वजह से उसे अपनी गलत कार्रवाइयों का अहसास हुआ । उसने दोनों राज्यों से तुरंत ही समझौता कर लिया । वैसे समझौता उदारतापूर्ण नहीं था । राजा जयसिंह और राजा अजीतसिंह को अपने राज्य तो फिर से मिल गए परंतु उच्च मनसबों तथा मालवा और गुजरात जैसे महत्वपूर्ण सूबों के सूबेदारों के ओहदों की उनकी मांग नहीं मानी गई । मराठा सरदारों के प्रति उसकी नीति ऊपरी तौर पर ही मेल-मिलाप की थी । उसने उन्हें दक्कन की सरदेशमुखी दे दी मगर चौथ का अधिकार नहीं दिया, इसलिए वह उन्हें पूरी तरह संतुष्ट नहीं कर सका । उसने साहू को मराठों का विधिवत राजा नहीं माना । इस प्रकार उसने मराठा राज्य के ऊपर आधिपत्य के लिए ताराबाई और साहू को आपस में लड़ने को छोड़ दिया । नतीजा यह हुआ कि साहू और मराठा सरदार असंतुष्ट रहे और दक्कन अव्यवस्था का शिकार बना रहा । जब तक मराठा सरदार आपस में और मुगल सत्ता के खिलाफ लड़ते रहे तब तक शांति और व्यवस्था फिर से कायम नहीं हो सकी ।

बहादुरशाह ने गुरु गोविंद सिंह के साथ संधि कर और एक बड़ा मनसब देकर विद्रोही सिखों के साथ मेल-मिलाप करने की कोशिश की थी । परंतु जब गुरु गोविंद सिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर के नेतृत्व में उन्होंने पंजाब में बगावत का झंडा बुलंद किया तब बादशाह ने कड़ी कार्रवाई करने का फैसला किया और विद्रोहियों के खिलाफ अभियान का नेतृत्व खुद किया । विद्रोहियों ने जल्द ही

(1) बहादुरशाह ने आमेर की गद्दी पर जयसिंह को हटाकर विजय सिंह को बिठाने की कोशिश की

Scanned with CamScanner

(1) सोलहगढ़ —— गुरु गोविन्द सिंह
(1) इजारा —— इजारेदार
(2) जहांदार शाह —— जुल्फिकार खाँ
जहांदार शाह - सैय्यद बन्धु —— (1) अब्दुल्ला - वजीर
(2) हुसैन अली - मीर बख्शी
(3) मिर्जा राजा सवाई —— जयसिंह
(4) महाराजा —— अजीत सिंह

सतलज और यमुना के बीच के लगभग सारे क्षेत्र पर नियंत्रण जमा लिया । इस प्रकार वे दिल्ली के बिलकुल पड़ोस में पहुंच गए । यद्यपि बादशाह लोहगढ़ तथा अन्य महत्वपूर्ण सिख केन्द्रों पर कब्जा जमाने में सफल हो गया, फिर भी सिखों को दबाया नहीं जा सका और 1712 में उन्होंने लोहगढ़ वापस ले लिया । लोहगढ़ किला गुरु गोविंद सिंह ने अंबाला के उत्तर-पूर्व में हिमालय की तराई में बनाया ।

बहादुरशाह ने बुंदेला सरदार छत्रसाल से मेल-मिलाप कर लिया । छत्रसाल एक निष्ठावान सामंत बना रहा । बादशाह ने जाट सरदार चूरामन से भी दोस्ती कर ली । चूरामन ने बंदा बहादुर के खिलाफ अभियान में बादशाह का साथ दिया ।

बहादुरशाह के शासनकाल के दौरान प्रशासन की हालत और भी बिगड़ी । बादशाह द्वारा अंधाधुंध जागीरें देने तथा पदोन्नति करने के फलस्वरूप राजकीय वित्त की स्थिति पहले से भी खराब हो गई । शाही खजाने में 1707 में करीब 13 करोड़ रुपये की रकम ही रह गई थी । उसके शासन काल में शाही खजाने में जो कुछ रकम बची थी, वह खत्म हो गई ।

साम्राज्य जिन समस्याओं से घिरा था, उनका समाधान बहादुरशाह टटोल रहा था । समय मिलता तो शायद वह शाही किस्मत को फिर जगा पाता । दुर्भाग्यवश, 1712 में उसकी मौत ने साम्राज्य को एक बार फिर गृह-युद्ध में फंसा दिया ।

इस गृह-युद्ध और बाद के उत्तराधिकार संबंधी लड़ाइयों के दौरान मुगल राजनीति में एक नया तत्व आ गया । पहले सत्ता के लिए संघर्ष सिर्फ शहजादों के बीच होते थे तथा सामंत प्रत्याशियों को गद्दी हथियाने में मदद देते थे । परंतु जब महत्वकांक्षी सामंत सत्ता के सीधे दावेदार बन गए और गद्दी हथियाने के लिए शहजादों का इस्तेमाल वे महज कठपुतली के रूप में करने लगे । बहादुर शाह की मौत के बाद जो गृह-युद्ध हुआ उसमें उसका एक कम काबिल बेटा जहांदार शाह विजयी रहा क्योंकि उसे उस समय के सबसे शक्तिशाली सामंत जुल्फिकार खां का समर्थन मिला ।

जहांदार शाह एक कमजोर और पतित शहजादा था । उसमें सद्व्यवहार, बड़प्पन और शिष्टाचार की कमी थी । जहांदार शाह के शासन काल में प्रशासन वस्तुतः अत्यंत योग्य और कर्मठ जुल्फिकार खां के हाथों में था। जुल्फिकार खां वजीर बन गया था । उसका ख्याल था कि दरबार में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने तथा साम्राज्य को बचाने के लिए जरूरी है कि राजपूत राजाओं तथा मराठा सरदारों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए जाएं और हिंदू सरदारों के साथ आम तौर से मेल-मिलाप हो । इसलिए उसने तेजी से औरंगजेब की नीतियां बदल दीं । घृणित जजिया को खत्म कर दिया गया । आमेर के जयसिंह को मिर्जा राजा सवाई की पदवी दी गई और उन्हें मालवा का सूबेदार बना दिया गया; मारवाड़ के अजीतसिंह को महाराजा की पदवी दी गई और गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया । जुल्फिकार खां ने पहले के उस गैर-सरकारी व्यवस्था की पुष्टि कर दी जो दक्कन में उसके सहायक दाऊद खां पन्नी के 1711 में मराठा राजा साहू के साथ में की थी । इस व्यवस्था के अनुसार मराठा शासक को दक्कन का चौथ और वहां की सरदेशमुखी इस शर्त पर दे दी गई कि उनकी वसूली मुगल अधिकारी करेंगे और फिर मराठा अधिकारियों को दे देंगे । जुल्फिकार खां ने चूरामन जाट और छत्रसाल बुंदेला के साथ भी मेल-मिलाप कर लिया । केवल बंदा और सिखों के प्रति उसने दमन की नीति जारी रखी ।

जागीरों और ओहदों की अंधाधुंध वृद्धि पर रोक लगाकर जुल्फिकार खां ने साम्राज्य की वित्तीय हालत को सुधारने की कोशिश की । उसने मनसबदारों को अधिकृत संख्या में फौज रखने के लिए मजबूर करने की भी कोशिश की । उसने एक गलत प्रवृत्ति इजारा को बढ़ावा दिया । जैसा टोडरमल की भू-राजस्व व्यवस्था के अंतर्गत था उसी तरह निश्चित दर पर भू-राजस्व वसूल करने के बदले सरकार ने इजारेदारों (लगान के ठेकेदारों) और बिचौलियों के साथ यह करार करना आरंभ कर दिया कि वे सरकार को एक निश्चित मुद्राराशि दें । मगर किसानों से जितना लगान वसूल कर सकें उतना करने के लिए उन्हें आजाद छोड़ दिया गया । इससे किसानों का उत्पीड़न बढ़ा ।

अनेक शाही सामंतों ने जुल्फिकार खां के विरुद्ध षड्यंत्र किया । इससे भी बुरी बात यह हुई कि बादशाह ने उसे अपना विश्वास और सहयोग पूरी तरह नहीं दिया । बेईमान कृपापात्र लोगों ने जुल्फिकार खां के खिलाफ बादशाह के कान भरे । उसे कहा गया कि उसका वजीर बहुत ही ताकतवर और महत्वाकांक्षी होता जा रहा है और वह खुद बादशाह का तख्ता पलट सकता है ।

(1) करनाल — 24 फरवरी 1739 — निजामुलमुल्क, कमरुद्दीन, खानेदौरां, सआदत खाँ
(2) लाहौर (20) → अटक (10) → काबुल (10)
(3) नजीब - मीर बख्शी, इमाद - वजीर, आलमगीर-II - हमर — अब्दाली - 1757

Scanned with CamScanner

(1) जयसिंह — मालवा
(2) अजीतसिंह — गुजरात

फर्रुखसियर — सैयद-बंधु — मुहम्मद शाह

बहादुर → जहांदार → फर्रुखसियर → मुहम्मद

साहू → बालाजी विश्वनाथ–1713

क़ायर बादशाह की हिम्मत नहीं हुई कि ताकतवर वज़ीर को बर्खास्त कर सके, मगर उसने गुप्त रूप से वज़ीर के खिलाफ षड्यंत्र करना शुरू कर दिया। स्वस्थ्य प्रशासन के लिए इससे बढ़कर विध्वंसकारी कार्य और कुछ नहीं हो सकता था।

जहांदार शाह का यशहीन शासन जल्द ही जनवरी 1713 में आगरा में उसके अपने भतीजे फर्रुखसियर के हाथों हार जाने पर समाप्त हो गया।

फर्रुखसियर

फर्रुखसियर की अपनी जीत सैयद बंधुओं–अब्दुल्ला खां और हुसैन अली खां बाराहा–के कारण मिली। इसलिए अब्दुल्ला खां को वज़ीर का पद और हुसैन अली खां को मीर बख्शी का ओहदा मिला। जल्द ही राजकाज में दोनों भाइयों का बोलबाला हो गया। फर्रुखसियर में शासन करने की क्षमता नहीं थी। वह कायर, क्रूर, अविश्वसनीय और बेईमान था। इसके अलावा, वह नालायक मुंह लगे लोगों तथा चापलूसों के असर में आ जाता था।

अपनी कमज़ोरियों के बावजूद फर्रुखसियर सैयद बंधुओं को बेरोकटोक काम करने देने के लिए तैयार नहीं था, बल्कि वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता कायम करना चाहता था। दूसरी ओर सैयद बंधुओं का पक्का विश्वास था कि केवल उनके हाथों में वास्तविक सत्ता आने तथा बादशाह के नाममात्र के शासक होने पर ही प्रशासन ठीक ढंग से चलाया जा सकता है, साम्राज्य का अपकर्ष रोका जा सकता है और उनकी अपनी स्थिति सुरक्षित रखी जा सकती है। इस तरह बादशाह फर्रुखसियर, और उसके वज़ीर तथा मीर बख्शी के बीच सत्ता के लिए एक लंबा संघर्ष आरंभ हो गया। सालों तक कृतघ्न बादशाह ने दोनों भाइयों को उखाड़ फेंकने के लिए षड्यंत्र किया, मगर हर बार असफल रहा। आखिरकार सैयद बंधुओं ने 1719 में उसे गद्दी से उतार दिया और उसे मार डाला। उसकी जगह उन्होंने बड़ी जल्दी, बारी-बारी से, दो युवा शहज़ादों को गद्दी पर बिठाया जो क्षय रोग से मर गए। तब सैयद बंधुओं ने 18 वर्षीय मुहम्मद शाह को हिंदुस्तान का बादशाह बनाया। फर्रुखसियर के तीनों उत्तराधिकारी सैयद बंधुओं के हाथों की कठपुतली मात्र थे। यहां तक कि लोगों से मिलने-जुलने और घूमने-फिरने की उनकी व्यक्तिगत आज़ादी पर भी नियंत्रण था। इस प्रकार 1713 से 1720 में उनके उखाड़ फेंके जाने तक राजकीय प्रशासन में सैयद बंधुओं की चलती रही।

सैयद बंधुओं ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। उनका विश्वास था कि देश के राजकाज में हिंदू सरदारों और सामंतों को मुसलमान सामंतों के साथ मिलाकर ही हिंदुस्तान का शासन सुव्यवस्थित रूप से चल सकता है। उन्होंने राजपूतों, मराठों और जाटों के साथ मेल-मिलाप कर उनका इस्तेमाल फर्रुखसियर और प्रतिद्वंद्वी सामंतों के खिलाफ करने की कोशिश की। उन्होंने फर्रुखसियर के गद्दी पर बैठते ही जज़िया को तुरंत खत्म कर दिया। इसी प्रकार कई जगहों में तीर्थयात्री कर (Pilgrim Tax) हटा दिया। उन्होंने मारवाड़ के अजीतसिंह, आमेर के जयसिंह तथा अनेक राजपूत राजकुमारों को प्रशासन में प्रभावशाली ओहदे देकर अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने जाट सरदार चूरामन के साथ दोस्ती कर ली, अपने प्रशासन के बाद के वर्षों में राजा साहू को (शिवाजी) का स्वराज्य तथा दक्कन के छः प्रांतों का चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार देकर उसके साथ समझौता कर लिया। बदले में साहू उन्हें 15,000 घुड़सवारों के द्वारा दक्कन में समर्थन देने को तैयार हो गया।

जज़िया व तीर्थयात्री कर समाप्त किया —— सैयद बंधुओं (फर्रुखसियर)

(1) नजीब → जाबता → गुलाम कादिर

Scanned with CamScanner

(1) शाह आलम II 1759
(2) पालखेड, मुंगी शेवगांव – 1728 → भारना 1731 → भलकी 1752 → सिन्दखेड़ – 1757 → उदगीर 1760 – निजाम
(3) रघुनाथ – नजीब – 1757 – गाजीउद्दीन – आलमगीर II
(4) काशीराज पंडित ने हार के बाद ... ।
(5) दिल्ली हार – पूर्ने शाह

तीसरी लड़ाई में हराया और इस तरह मराठों की इस महत्वाकांक्षा को बड़ा धक्का लगा कि वे मुगल बादशाह पर नियंत्रण रखेंगे तथा देश पर आधिपत्य कायम करेंगे । मगर उसने भारत में कोई नया अफगान राज कायम नहीं किया । वह और उसके उत्तराधिकारी पंजाब को भी अपने अधिकार में नहीं रख सके । पंजाब जल्द ही सिख सरदारों के हाथों में चला गया ।

नादिर शाह और अब्दाली के आक्रमणों तथा मुगल सामंतशाही के आपसी घातक झगड़ों के कारण 1761 तक मुगल साम्राज्य का अस्तित्व वस्तुतः एक अखिल भारतीय साम्राज्य के रूप में समाप्त हो गया । वह केवल दिल्ली का राज्य रह गया । खुद दिल्ली में रोज दंगे और हंगामे नजर आने लगे । महान मुगलों के वंशज अब भारतीय साम्राज्य के लिए संघर्ष में सक्रिय हिस्सा नहीं लेते थे । सत्ता के विभिन्न दावेदारों ने पाया कि उनके नाम पर संघर्ष चलाना राजनीतिक दृष्टि से फायदेमंद है । इससे

शाह आलम द्वितीय

(1) BV – सालबाई संधि
(2) नीलामी – BII, हेस्टिंग्स
(3) पटेल → कुलकर्णी → चौगुले

मुगल वंश दिल्ली के नाममात्र के सिंहासन पर बहुत दिनों तक बना रहा ।

शाह आलम द्वितीय 1759 में गद्दी पर बैठा । वह आरंभ के सालों में अपनी राजधानी से दूर एक जगह से दूसरी जगह घूमता रहा क्योंकि उसे अपने ही वजीर से जान का खतरा था । वह काबिल और भरपूर हिम्मत वाला था । मगर साम्राज्य की हालत इतनी बिगड़ गई थी कि उसका उद्धार संभव नहीं था । उसने 1764 में बंगाल के मीर कासिम और अवध के शुजाउद्दौला के साथ मिलकर अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ लड़ाई की घोषणा कर दी । बक्सर की लड़ाई में अंग्रेजों से हार जाने के बाद वह कई वर्षों तक इलाहाबाद में ईस्ट इंडिया कंपनी का पेंशनयाफ्ता बनकर रहा । वह 1772 में मराठों के संरक्षण में ब्रिटिश आश्रय छोड़कर दिल्ली लौटा । अंग्रेजों ने 1803 में दिल्ली पर कब्जा कर लिया । तब से लेकर 1857 तक जब मुगल वंश अंतिम रूप से खत्म हो गया, मुगल बादशाह अंग्रेजों के लिए केवल राजनीतिक मोहरा बने रहे । मुगल राजतंत्र 1759 के बाद फौजी ताकत नहीं रहा तो भी वह इसलिए बना रहा कि भारत की जनता के दिमाग पर देश की राजनीतिक एकता के प्रतीक के रूप में उसका बड़ा प्रभाव था ।

मुगल साम्राज्य के पतन का सबसे महत्वपूर्ण नतीजा यह हुआ कि इसने ब्रिटिश शासकों के लिए भारत विजय का रास्ता आसान कर दिया । भारतीय शक्तियों के बीच से कोई भी शक्ति महान मुगलों की विरासत का दावा करने के लिए सामने नहीं आई । वे साम्राज्य को नष्ट करने के लिए पर्याप्त रूप से ताकतवर थीं मगर उसे एकता के सूत्र में बांधने या उसकी जगह पर कोई नई चीज लाने में समर्थ नहीं थीं । वे ऐसी कोई नई समाज व्यवस्था नहीं बना सकीं जो पश्चिम से आने वाले नए दुश्मन के सामने टिक सके । उनमें से सब उसी ठूंठ समाज व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थीं जिसके नेता मुगल थे । वह सब उन्हीं कमजोरियों का शिकार थीं जिन्होंने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य को नष्ट कर दिया था । दूसरी ओर भारत का दरवाजा खटखटा रहे यूरोपवासी ऐसे समाज से आए थे जिसने एक बेहतर आर्थिक व्यवस्था का विकास किया था और जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में काफी उन्नत था । मुगल साम्राज्य के पतन की सबसे दुःखद बात यह हुई कि उसकी जगह पर एक विदेशी शक्ति आई जिसने अपने हितों

(4) पांच राजा – मोकाशा – 66%, बाबुती – 25, सरदेशमुखी – 6, नाडगौडा – 3

(1) उत्तराधिकार वाले राज्य — अवध, हैदराबाद
(2) मुगल प्रभाव नहीं था — दक्षिण-पश्चिम तथा द० पूर्व के समुद्री किनारों के इलाके तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र शामिल थे।

का ख्याल कर देश के शताब्दियों पुराने सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक ढांचे की जगह एक औपनिवेशिक ढांचा स्थापित कर दिया।

भारतीय राज्य और समाज

मुगल साम्राज्य के धीरे-धीरे कमजोर होने और पतन की ओर बढ़ने के साथ-साथ स्थानीय राजनीतिक और आर्थिक शक्तियां सिर उठाने लगीं और अपना दबाव बढ़ाने लगीं। 17वीं सदी के अंत और उसके बाद में राजनीति में जबर्दस्त परिवर्तन हुआ। 18वीं सदी के दौरान मुगल साम्राज्य और उसकी राजनीतिक व्यवस्था के खंडहर पर बड़ी संख्या में स्वतंत्र और अर्ध-स्वतंत्र शक्तियां उठ खड़ी हुईं, जैसे बंगाल, अवध, हैदराबाद, मैसूर और मराठा राजशाही। भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए ब्रिटिश लोगों को इन्हीं ताकतों पर विजय प्राप्त करनी पड़ी थी।

इनमें से कुछ राज्यों को "उत्तराधिकार वाले राज्य" कहा जा सकता है जैसे अवध तथा हैदराबाद। मुगल साम्राज्य की केंद्रीय शक्ति के कमजोर होने पर मुगल प्रांतों के गवर्नरों के स्वतंत्र होने का दावा करने से इन राज्यों का जन्म हुआ। दूसरे, मराठा, अफगान, जाट तथा पंजाब जैसे राज्यों का जन्म मुगल शासन के खिलाफ स्थानीय सरदारों, जमींदारों तथा किसानों के विद्रोह के कारण हुआ था। न केवल दो तरह के राज्यों की राजनीति कुछ हद तक भिन्न होती थी बल्कि इन सब में आपस में स्थानीय परिस्थितियों के कारण भी अंतर था। फिर भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मोटे तौर पर इन सभी का राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचा तकरीबन एक-सा ही था लेकिन एक तीसरा क्षेत्र भी था। इनमें दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व के समुद्री किनारों के इलाके तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र शामिल थे जहां पर किसी भी रूप में मुगल प्रभाव नहीं पहुंच सका था। मुगल सम्राट की नाममात्र की सर्वोच्चता स्वीकार कर और उनके प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर 18वीं शताब्दी के सभी राज्यों के शासकों ने अपने पद को वैधता प्रदान करने की कोशिश की थी। बहरहाल, इनमें से लगभग सभी ने मुगल प्रशासन के तौर तरीके और उसकी पद्धति को अपनाया। पहले समूह में आने वाले राज्यों ने उत्तराधिकार के रूप में कार्य विधि, मुगल प्रशासनिक ढांचा और संस्थाओं को प्राप्त किया था। दूसरों ने इनमें अलग-अलग मात्रा में थोड़ा बहुत परिवर्तन करके इस ढांचे तथा इन संस्थाओं को अपनाया था जिसमें मुगल शासकों की राजस्व व्यवस्था भी शामिल थी।

इन राज्यों के शासकों ने शांति व्यवस्था बहाल की तथा व्यावहारिक, आर्थिक और प्रशासनिक ढांचा खड़ा किया। निचले स्तर पर काम करने वाले अधिकारियों, छोटे-छोटे सरदारों तथा जमींदारों की ताकतें कम कीं और इस काम में इन सबको अलग-अलग मात्रा में सफलता मिली। किसानों के अधिशेष उत्पादन पर नियंत्रण के लिए ये लोग ऊपर के अधिकारियों से झगड़ते रहते थे और कभी-कभी सत्ता और संरक्षण के स्थानीय केंद्र कायम करने में ये लोग सफल भी हो जाते थे। उन्होंने उन स्थानीय जमींदारों तथा सरदारों से भी समझौता किया तथा उनको अपने साथ किया जो शांति और व्यवस्था चाहते थे। आमतौर पर, कहा जाए तो, अधिकांश राज्यों में राजनीतिक अधिकारों का विकेंद्रीकरण हो गया तथा सरदारों, जागीरदारों और जमींदारों को इसके कारण राजनीतिक और आर्थिक शक्ति की दृष्ठि से लाभ मिला। इन राज्यों की राजनीति लगातार गैर-सांप्रदायिक या धर्मनिरपेक्ष बनी रही क्योंकि इन राज्यों के शासकों की आर्थिक तथा राजनीतिक प्रेरक शक्ति समान थी। सार्वजनिक स्थानों की नियुक्तियों, सेना में भर्ती या नागरिक सेवाओं में ये शासक धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं बरतते थे और जब लोग किसी सत्ता अथवा शासन के विरुद्ध विद्रोह करते थे तो इस बात पर विचार नहीं करते थे कि उनके शासक का धर्म क्या है। इसलिए इस बात पर विश्वास करने के लिए कोई आधार नहीं मिलता है कि मुगल साम्राज्य के पतन और विघटन के बाद भारत के विभिन्न भागों में कानून और व्यवस्था की समस्या उठ खड़ी हुई और चारों ओर अराजकता फैल गई। वास्तविकता तो यह है कि 18वीं शताब्दी में प्रशासन तथा अर्थव्यवस्था में जो भी अव्यवस्था विद्यमान थी, वह भारतीय राज्यों के आंतरिक मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप और ब्रिटेन द्वारा चलाए गए विजय अभियानों का परिणाम थी।

हां, यह बात सही है कि 17वीं सदी में जो आर्थिक संकट शुरू हुए थे, इनमें से कोई भी राज्य उनको रोकने में सफल नहीं हो पाया। इनमें से सभी राज्य मूल रूप से कर उगाहने वाले राज्य बने रहे। जमींदारों और जागीरदारों की संख्या तथा

(1) आर्कगाँव – 1765 तोपें बनाने का कारखाना, पूना – 1770
(2) एलाशापल की संधि — 1748 — आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध समाप्त
(3) डूप्ले ने मद्रास को जीतकर नवाब को दे देने का प्रस्ताव रखा

Scanned with CamScanner

[1] हैदराबाद 1724 — निजामुल्मुल्क आसफजाह दक्कन का वायसराय
[2] कर्नाटक — सआदतुल्ला खाँ → दोस्त अली
[3] बंगाल — मुर्शिद कुली और अली वर्दी खाँ — सिराजुद्दौला
[4] अवध — सआदत खाँ बुरहानुल्मुल्क

राजनीतिक ताकत में लगातार वृद्धि होती गई और कृषि से होने वाली आमदनी के लिए लगातार आपस में झगड़ते रहे, और इसके साथ-साथ किसानों की हालत दिनोदिन बिगड़ती चली गई । जहां इन राज्यों ने आंतरिक व्यापार को ठप्प नहीं होने दिया बल्कि विदेशों से व्यापार को बढ़ावा देने की कोशिश भी की लेकिन अपने राज्यों के आधारभूत औद्योगिक और वाणिज्यिक ढांचे को आधुनिक रूप देने के लिए इन लोगों ने कुछ नहीं किया । इससे यह बात साफ हो जाती है कि वे आपस में क्यों नहीं संगठित हो सके और विदेशी आक्रमणों को विफल करने में उनको क्यों नहीं सफलता हासिल हो सकी ।

हैदराबाद और कर्नाटक : निजाम-उल- मुल्क आसफजाह ने 1724 में हैदराबाद राज्य की स्थापना की । औरंगजेब के बाद के समय के नवाबों में उसका महत्वपूर्ण स्थान था । सैयद बंधुओं को गद्दी से हटाने में उसकी अहं भूमिका थी । उसको दक्कन के वाइसराय का खिताब प्राप्त हुआ था । 1720 से 1722 के बीच दक्कन में उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ की । वह 1722 से 1724 तक साम्राज्य का वजीर रहा । मगर वह जल्द ही वजीर के काम से तंग आ गया क्योंकि बादशाह मुहम्मद शाह ने प्रशासन में सुधार लाने की उसकी सब कोशिशों को नाकाम कर दिया । इसलिए उसने दक्कन वापस जाने का फैसला किया जहां वह सही-सलामत अपना आधिपत्य बनाए रख सकता था । यहां उसने हैदराबाद राज्य की नींव रखी जिस पर उसने कठोरतापूर्वक शासन किया । उसने केंद्रीय सरकार से अपनी स्वतंत्रता की खुलेआम घोषणा कभी नहीं की, मगर उसने व्यवहार में स्वतंत्र शासक के रूप में काम किया । उसने दिल्ली की केंद्रीय सरकार से बिना पूछे लड़ाइयां लड़ी, सुलह किए, खिताब बांटे और जागीरें तथा ओहदे दिए । उसने हिंदुओं के प्रति सहनशीलता की नीति अपनाई । उदाहरण के लिए, एक हिंदू, पूरनचंद, उसका दीवान था । उसने दक्कन में मुगलों के नमूने पर जागीरदारीप्रथा चला कर सुव्यवस्थित प्रशासन स्थापित कर अपनी सत्ता को मजबूत बनाया । उसने बड़े उपद्रवी जमींदारों को अपनी सत्ता मानने के लिए मजबूर किया और शक्तिशाली मराठों को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा । उसने राजस्व व्यवस्था को भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए भी कोशिश की । मगर 1748 में उसके मरने के बाद हैदराबाद उन्हीं विघटनकारी शक्तियों का शिकार हो गया जो दिल्ली में सक्रिय थीं ।

कर्नाटक, मुगल दक्कन का एक सूबा था और इस तरह वह हैदराबाद के निजाम के अधिकार के अंतर्गत आता था । मगर व्यवहार में जिस प्रकार निजाम दिल्ली की सरकार से स्वतंत्र हो गया था उसी प्रकार कर्नाटक का नायब सूबेदार, जिसे कर्नाटक का नवाब कहा जाता था, अपने को दक्कन के नवाब के नियंत्रण से मुक्त कर अपने ओहदे को वशंगत बना चुका था । अतः कर्नाटक के नवाब सआदतउल्ला खां ने अपने भतीजे दोस्त अली को निजाम की मंजूरी के बिना ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था । आगे चलकर 1740 के बाद कर्नाटक की स्थिति नवाबी के लिए बारंबार संघर्षों के कारण बिगड़ी और इससे यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों को भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया ।

अपने एक भतीजे और पोते सिराजुद्दौला के साथ अली वर्दी खां

[1] कर्नाटक — हैदराबाद से स्वतन्त्र हो गया उसी तरह हैदराबाद, दिल्ली से स्वतन्त्र हो गया
[2] कर्नाटक I — 1746-48, कर्नाटक II — 1749-54, कर्नाटक III — 1758-63
(3) चन्दरनगर — 1746 — पाराडाइज नेमहफूज

Scanned with CamScanner

(1) कलकत्ता (2) चंद्रनगर

मुर्शिद कुली के समय तीन विद्रोह (1) सीताराम राय, उदय नारायण, गुलाम मुहम्मद (2) शुजात खाँ (3) नजात खाँ

मुर्शिद कुली (1717) → शुजाउद्दीन (1727) → सरफराज (1739) → अलीवर्दी खाँ → सिराजुद्दौला

बंगाल : केंद्रीय सत्ता की बढ़ती हुई कमजोरी का फायदा उठाकर असाधारण योग्यता वाले दो व्यक्तियों, मुर्शिद कुली खां और अली वर्दी खां ने बंगाल को वस्तुतः स्वतंत्र बना दिया । मुर्शिद कुली खां को 1717 में जाकर बंगाल का सूबेदार बनाया गया, मगर वह उसका वास्तविक शासक 1700 से ही था जब उसे दीवान बनाया गया था । उसने अपने को तुरत केंद्रीय नियंत्रण से मुक्त कर लिया यद्यपि वह बादशाह को नियमित रूप से नजराने की काफी बड़ी रकम भेजता रहा । उसने अंदरूनी और बाहरी खतरे से बंगाल को मुक्त कर वहां शांति कायम की। अब बंगाल जमींदारों की प्रमुख बगावतों से भी कमोबेश मुक्त हो गया । उसके शासन के दौरान केवल तीन विद्रोह हुए । पहला विद्रोह सीताराम राय, उदय नारायण और गुलाम मुहम्मद ने किया । उसके बाद शुजात खां ने बगावत की । अंतिम विद्रोह नजात खा का था । उनको हराने के बाद मुर्शिद कुली खां ने उनकी जमींदारियां अपने कृपापात्र रामजीवन को दे दीं । मुर्शिद कुली खां 1727 में मर गया । उसके बाद उसके दामाद शुजाउद्दीन ने बंगाल पर 1739 तक शासन किया । उसकी जगह पर उसका बेटा सरफराज खां आया जिसे उसी साल गद्दी से हटाकर अली वर्दी खां नवाब बन गया ।

इन तीनों नवाबों ने बंगाल को शांति और सुव्यवस्थित प्रशासन दिया । उन्होंने व्यापार और उद्योग को बढ़ावा दिया । मुर्शिद कुली खां ने प्रशासन में मितव्ययिता बरती । उसने बंगाल के वित्तीय मामलों का प्रबंध नए सिरे से किया । उसने नए भू-राजस्व बंदोबस्त के जरिए जागीर भूमि के एक बड़े भाग को खालसा भूमि बना दिया और इजारा व्यवस्था (ठेके पर भू-राजस्व वसूल करने की वयवस्था) आरंभ की । स्थानीय जमींदारों और सौदागर साहूकारों के बीच से उसने राजस्व वसूलने वाले किसान और सौदागर साहूकार भर्ती किए । उसने गरीब खेतिहरों का कष्ट दूर करने तथा उन्हें समय पर भू-राजस्व देने में समर्थ बनाने के लिए तकावी ऋण भी दिए । इस प्रकार वह बंगाल सरकार के संसाधनों को बढ़ा सका । मगर इजारा व्यवस्था ने किसानों और जमींदारों पर आर्थिक बोझ बढ़ा दिया । इसके अलावा, यद्यपि उसने केवल असल जमा की मांग की और गैरकानूनी टैक्स हटा दिए, तथापि उसने जमींदार और किसानों से लगान की वसूली बड़ी निर्दयता के साथ की । उसके सुधारों का एक परिणाम यह हुआ कि अनेक पुराने जमींदारों को निकाल बाहर किया गया और उनकी जगह पर अभी-अभी पनपे इजारेदार आ गए।

मुर्शिद कुली खां और उसके बाद के नवाबों ने हिंदुओं और मुसलमानों को रोजगार के समान अवसर दिए । उन्होंने सबसे ऊंचे नागरिक ओहदों और कई फौजी ओहदों पर बंगालियों को रखा जिनमें अधिकतर हिंदू थे । इजारेदारों को चुनते समय मुर्शिद कुली खां ने स्थानीय जमींदार और महाजनों को प्राथमिकता दी जिनमें अनेक हिंदू थे । इस प्रकार उसने बंगाल में एक नए भू-अभिजात वर्ग को जन्म दिया ।

तीनों नवाबों ने माना कि व्यापार का प्रसार जनता और सरकार के लिए फायदेमंद है इसलिए उन्होंने भारतीय और विदेशी सभी व्यापारियों को बढ़ावा दिया । नियमित थानों, और चौकियों की व्यवस्था कर सड़कों और नदियों की सुरक्षा का इंतजाम किया । उन्होंने अफसरों के निजी व्यापार को रोक दिया । साथ ही उन्होंने इस बात का भी ख्याल रखा कि विदेशी व्यापारिक कंपनियों तथा उनके नौकरों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाए और उन्हें अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करने दिया जाए। उन्होंने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकरों को देश के कानूनों का पालन करने तथा अन्य व्यापारियों के बराबर सीमा शुल्क देने के लिए मजबूर किया । अली वर्दी खां ने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को कलकत्ता और चंद्रनगर के अपने कारखानों की किलेबंदी करने की इजाजत नहीं दी । इन सबके बावजूद बंगाल के नवाब एक दृष्टि से बड़े नासमझ और लापरवाह साबित हुए । अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रवृत्ति 1707 के बाद अपनी मांगों को मनवाने के लिए सैनिक शक्ति का इस्तेमाल करने या उसके इस्तेमाल की धमकी देने की होने लगी थी । नवाबों ने इस प्रवृत्ति को मजबूती से नहीं दबाया । वे कंपनी की धमकियों का जवाब देने की ताकत रखते थे, मगर उनका निरंतर यह विश्वास रहा कि कोई भी मात्र व्यापारिक कंपनी उनकी सत्ता के लिए कोई खतरा पैदा नहीं कर सकती । वे इस बात को नहीं महसूस कर सके कि अंग्रेजी कंपनी व्यापारियों की कंपनी मात्र नहीं थी बल्कि उस समय के अत्यंत आक्रामक और विस्तारवादी उपनिवेशक का प्रतिनिधि थी । शेष दुनिया के बारे में उनका अज्ञान और उससे संपर्क का अभाव [illegible]य के लिए बड़ा महंगा पड़ा, नहीं तो अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, लैटिन

मुर्शिद कुली —— इजारा, तकावी ऋण

अलीवर्दी खाँ —— कलकत्ता व चन्द्रनगर को किलेबंदी की इजाजत नहीं

Scanned with CamScanner

(1) सआदत खाँ → सफदरजंग
(2) डूप्ले → गोडेहू - 1754 (3) अम्बूर - 1749 - अनवरुद्दीन की मृत्यु
(4) मुहम्मद अली - त्रिचनापल्ली → स्ट्रिंगर लारेंस (5) अर्काट - क्लाइव
(5) चन्दा साहब की धोखे से तंजौर के राजा ने हत्या करदी
(6) काउन्ट लाली - 1758 - फोर्ट सेन्ट डेविड (7) पोकोक - [illegible]

(10)

अमरीका में पश्चिमी व्यापारिक कंपनियों के विध्वंसकारी कामों के संबंध में उनको जानकारी अवश्य हो जाती।

बंगाल के नवाबों ने शक्तिशाली फौज बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया और इसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। उदाहरण के लिए, मुर्शिद कुली खां की फौज में केवल 2,000 घुड़सवार और 4,000 पैदल सैनिक थे। अली वर्दी खां को मराठों के बारंबार हमलों से तंग होना पड़ा और अंततोगत्वा उसे उड़ीसा का एक बड़ा हिस्सा उन्हें दे देना पड़ा। जब 1756–57 में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने अली वर्दी खां के उत्तराधिकारी सिराजउद्दौला के खिलाफ लड़ाई का ऐलान किया तब शक्तिशाली फौज के अभाव ने भी विदेशी कंपनी की जीत में काफी योगदान दिया। अफसरों के बीच बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को रोकने में भी बंगाल के नवाब असफल रहे। यहां तक कि न्यायिक अधिकारी—काजी और मुफ्ती घूस लेने में नहीं हिचकिचाते थे। विदेशी कंपनियों ने इस कमजोरी का पूरा फायदा उठाया और सरकारी कानून कायदों और नीतियों की जड़ें खोदीं।

अवध . अवध के स्वायत्त राज्य का संस्थापक सआदत खां बुरहान-उल-मुल्क था। उसे 1722 में अवध का सूबेदार बनाया गया था। वह अत्यंत निडर, कर्मठ, दृढ़ प्रतिज्ञ, और तेज आदमी था। उसकी नियुक्ति के समय कई बगावती जमींदारों ने प्रांत में हर जगह सिर उठाया। उन्होंने माल-गुजारी देने से इंकार कर दिया, अपनी निजी सेवाएं गठित कीं, किले बनाए और शाही सरकार की अवज्ञा की। वर्षो तक सआदत खां को उनसे लड़ना पड़ा। उसने अंधेरगर्दी को खत्म किया और बड़े जमींदारों को अनुशासित किया। इस प्रकार उसने अपनी सरकार के वित्तीय संसाधनों को बढ़ाया। विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देकर उसने दूसरे सरदारों और जमींदारों को अपनी तरफ कर लिया। किंतु उसने अधिकतर पराजित जमींदारों को नहीं हटाया। अधीनता स्वीकार करने और देय रकम (भू-राजस्व) नियमित रूप से अदा करने पर सहमत होने के बाद उन्हें भी अपनी जगह पर पक्का कर दिया गया।

सआदत खां ने भी 1723 में नया राजस्व-बंदोबस्त (रेवेन्यू सेटलमेंट) किया। कहा जाता है कि उचित भू-लगान लगाकर तथा बड़े जमींदारों के जुल्मों से बचाकर उसने किसानों की हालत को बेहतर बनाया।

बंगाल के नवाबों की तरह ही उसने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया। उसके अनेक सेनापति और उच्च अधिकारी हिंदू थे। उसने हठीले जमींदारों, सरदारों और सामंतों को उनके धर्म का बिना कोई ख्याल किए दबा दिया। उसके सैनिकों को अच्छे वेतन मिलते थे। वे हथियारों से सुसज्जित और सुप्रशिक्षित थे। उसका प्रशासन कार्यकुशल था। उसने भी जागीरदारी प्रथा को जारी रखा। 1739 में अपने मरने के पहले वह वस्तुतः स्वतंत्र बन गया था और उसने प्रान्त को अपनी वंशगत जायदाद बना लिया था उसकी जगह उसके भतीजे सफदर जंग ने ली। वह, साथ ही, 1748 में साम्राज्य का वजीर भी बना दिया गया। इसके अलावा उसे इलाहाबाद का प्रांत भी दिया गया।

सफदर जंग ने 1754 में अपने मरने तक अवध और इलाहाबाद की जनता को किसी अशांति का सामना करने नहीं दिया। उसने बगावती जमींदारों को दबा दिया और दूसरों को अपने पक्ष में कर लिया। उसने मराठा सरदारों से मित्रता कर ली जिससे उसके अधिकार क्षेत्र में उनकी घुसपैठ न हो सके। राजपूत सरदारों और शेखज़ादाओं की स्वामिभक्ति हासिल करने में भी वह कामयाब रहा। उसने रूहेलों और बंगश पठानों के खिलाफ लड़ाइयां छेड़ीं। बंगश नवाबों के खिलाफ 1750-51 की लड़ाई में उसने मराठों की सैनिक सहायता तथा जाटों का समर्थन प्राप्त किया। इसके लिए उसे मराठों को प्रतिदिन 25,000 रुपये और जाटों को रोज 15,000 रुपये देने पड़े। बाद में उसने पेशवा के साथ एक करार किया जिसके अनुसार पेशवा ने मुगल साम्राज्य को अहमद शाह अब्दाली के खिलाफ मदद देने और उसे भारतीय पठानों तथा राजपूत राजाओं जैसे अंदरूनी विद्रोहियों से बचाने का वचन दिया। बदले में पेशवा को 50 लाख रुपये तथा पंजाब, सिंध और उत्तर भारत के कई जिलों का चौथ दिया जाने वाला था। इसके अलावा पेशवा को अजमेर और आगरा का सूबेदार बनाया जाना था। मगर पेशवा दिल्ली में सफदर जंग के दुश्मनों से जा मिला जिन्होंने उसे अवध और इलाहाबाद का सूबेदार बनाने का वचन दिया। इसलिए करार टूट गया।

सफदर जंग ने न्याय की उचित व्यवस्था की।

(7) वांडीवाश - 1760 - आयरकूट - लाली
(8) अंग्रेज व्यापार - 1698 - सुतानाटी - कालीकट, गोविन्दपुरी
(9) हुगली - 1651 - [illegible]

Scanned with CamScanner

(1) नवाब राय — सफदरजंग
(2) अलीनगर की संधि — 1757 — क्लाइव
(3) अठारहवीं सदी का भारत
प्लासी → अलीनगर → बेदरा → ... — मीर कासिम
(4) मीर जाफर — डच लोगों से मिलकर अंग्रेजों को बाहर निकालने का षड्यंत्र रचने लगे

(6) अलीगढ़ — शाह आलम
(7) मुंगेर — मीर कासिम
(8) ... — बर्दमान-मिदनापुर, चटगाँव — मीर कासिम

11

(5) बेदरा-1759
डच-क्लाइव

(11)

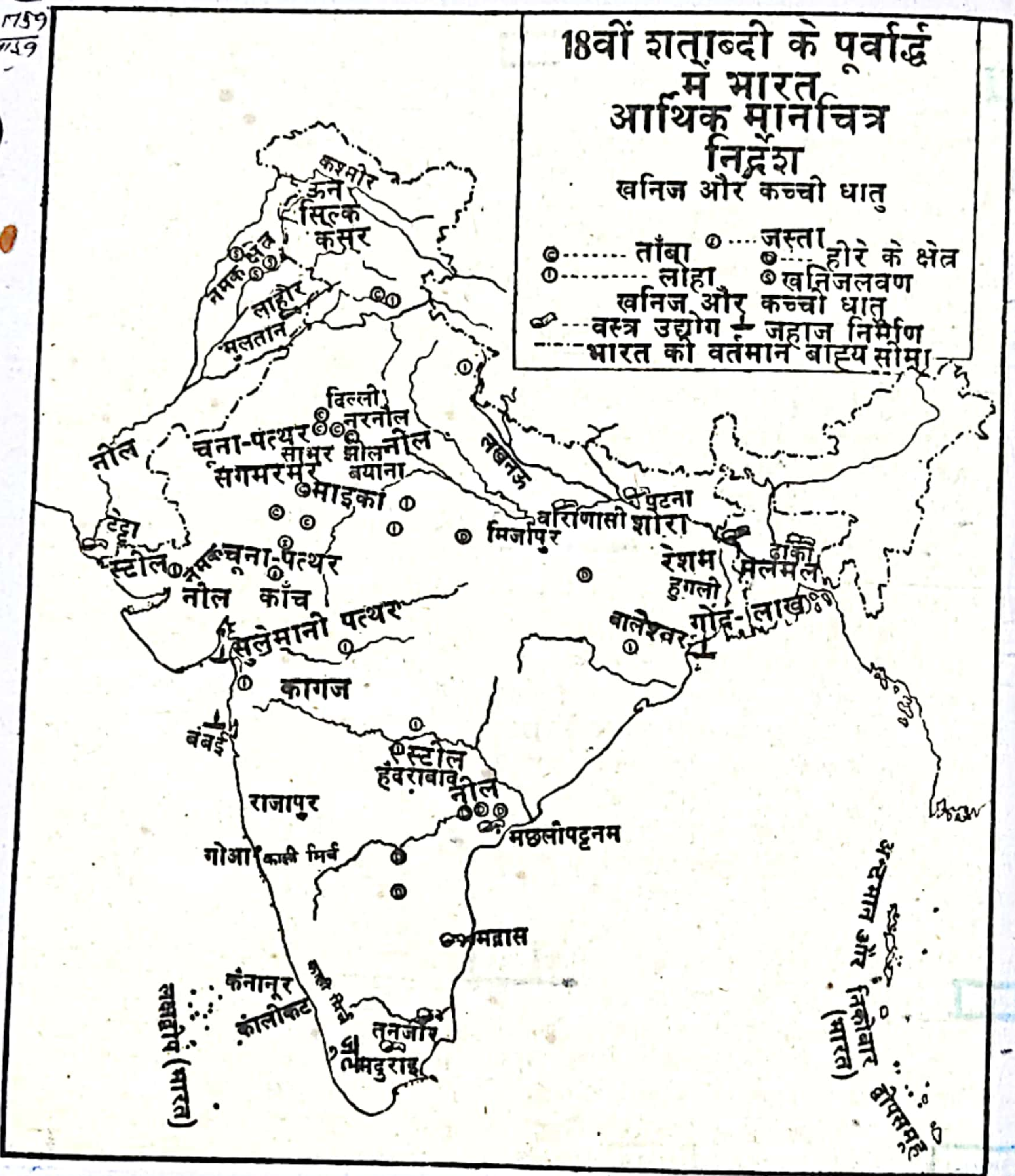

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है

© भारत सरकार का प्रतिलिप्याधिकार, 1986

(1) रामनारायण — बिहार का उपसूबेदार (2) ऐलिस — पटना, मुनरो — बक्सर
(2) सिक्का ... — नंजराज + देवराज
(3) 1784 के पिट्स इंडिया एक्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि कम्पनी और नया प्रदेश जीतने का प्रयत्न नहीं करेगी।

Scanned with CamScanner

मैसूर —— हैदर अली
डिंडिगुल 55 —— आधुनिक शस्त्रागार – फ्रांसीसी विशेषज्ञ की मदद
8) नंजराज + देवराज —— चिक्का कृष्णराज – हैदर अली

(12)

उसने भी नौकरियां देने में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच निष्पक्षता की नीति अपनाई। उसकी सरकार के सबसे बड़े ओहदे पर एक हिंदू, महाराजा नवाब राय आसीन था।

नवाबों की सरकार के तहत लंबे समय तक लगातार शांति और सामंतों की आर्थिक समृद्धि के परिणामस्वरूप अवध दरबार के इर्द-गिर्द एक विशिष्ट लखनवी संस्कृति कालक्रम से विकसित हुई। लखनऊ बहुत जमाने से अवध का एक महत्वपूर्ण शहर था। 1775 के बाद वह अवध के नवाबों का निवास स्थान बन गया। वह तुरंत ही कला और साहित्य को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से दिल्ली का प्रतिद्वंदी हो गया। वह हस्तशिल्प के एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में भी विकसित हुआ। स्थानीय सरदारों और जमींदारों के संरक्षण में दस्तकारी और संस्कृति दोनों का असर कस्बों तक पहुंच गया।

सफदर जंग ने बहुत ऊंची वैयक्तिक नैतिकता बनाए रखी। वह जिंदगी भर अपनी एकमात्र पत्नी के प्रति वफादार रहा। असल में हैदराबाद, बंगाल और अवध के तीनों स्वायत्त रजवाड़ों के संस्थापक क्रमशः निजाम-उल-मुल्क, मुर्शिद कुली खां और अली वर्दी खां ऊंची वैयक्तिक नैतिकता वाले लोग थे। उनमें से लगभग सबों ने संयमपूर्ण और सादा जीवन बिताया। यह इस धारणा को झूठा साबित करती है कि अठारहवीं सदी के प्रमुख सामंतों ने फिजूलखर्ची और विलासिता की जिंदगी बिताई। केवल अपने सार्वजनिक और राजनीतिक व्यवहार में ही उन्होंने धोखाधड़ी, षड्यंत्र और विश्वासघात का सहारा लिया।

मैसूर : दक्षिण भारत में हैदराबाद के पास हैदर अली के अधीन जिस सबसे महत्वपूर्ण सत्ता का उदय हुआ, वह मैसूर था। विजयनगर साम्राज्य के अंत होने के समय से ही मैसूर राज्य ने अपनी कमजोर स्वाधीनता को बनाए रखा और नाममात्र को ही यह मुगल साम्राज्य का अंग था। 18वीं सदी के शुरू में नंजराज (सर्वाधिकारी) और देवराज (दुलवई) नाम के दो मंत्रियों ने मैसूर की शक्ति अपने हाथ में ले रखी थी, इस प्रकार वहां के राजा चिक्का कृष्णराज को उन्होंने कठपुतली में बदल दिया था। हैदर अली का जन्म 1721 में एक अत्यंत सामान्य परिवार में हुआ था। उसने अपना जीवन मैसूर की सेना में एकदम साधारण अधिकारी के रूप में शुरू किया था। वह शिक्षित तो नहीं था, लेकिन कुशाग्र

हैदर अली

बुद्धि और प्रतिभा का धनी था, अत्यंत परिश्रमी और लगनशील था, साहसी और दृढ़निश्चयी था। वह एक प्रतिभाशाली सेनानायक तथा चालाक राजनीतिक भी था।

मैसूर राज्य 20 साल तक युद्ध में उलझा रहा। इस दौरान हैदर अली को मौका मिला। उसे जो भी मौका मिला, उसका उसने लाभ उठाया और मैसूर की सेना में ऊंचे पद पर पहुंच गया। जल्दी ही उसने पश्चिमी सैनिक प्रशिक्षण के महत्व को पहचाना तथा जो सैनिक उसके अधीन थे उनको आधुनिक प्रशिक्षण दिलवाए। 1755 में डिंडिगल में उसने एक आधुनिक शस्त्रागार स्थापित किया। इसमें उसने फ्रांसीसी विशेषज्ञों की मदद ली। 1761 में उसने नंजराज को सत्ता से अलग कर दिया तथा मैसूर राज्य पर अपना अधिकार कायम कर लिया। योद्धा सरदारों और जमींदारों के विद्रोहों को उसने नियंत्रित कर लिया तथा बिदनूर, सुंदा, सेदा, कन्नड़ और मालाबार के इलाकों को जीत लिया।

Scanned with CamScanner

(1) सिक्का- ढलाई, नए कैलेंडर, नए पैमाने
(2) श्रीरंगपट्टम —— स्वतंत्रता वृक्ष
(3) जैकोबिन क्लब का सदस्य
(4) अठारहवीं सदी का भारत अंग्रेजों का सबसे खतरनाक दुश्मन
(5) दो नौका घाट बनवाए
पोलिगार

(13)

मालाबार को अपने अधीन करने का मुख्य कारण यह था कि वह भारतीय समुद्र तट तक अपनी पहुंच बनाए रखना चाहता था । पढ़ा लिखा न होने के बावजूद वह कुशल प्रशासक था । अपने राज्य में मुगल शासन प्रणाली तथा राजस्व व्यवस्था उसी ने लागू की थी । मैसूर जब कमजोर तथा विभाजित राज्य था, तब उसने उस पर कब्जा किया और शीघ्र ही उसके कारण इस राज्य की गिनती प्रमुख भारतीय शक्तियों में की जाने लगी । वह धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर चला । उसका पहला दीवान और अन्य अनेक अधिकारी हिंदू थे ।

अपनी सत्ता के लगभग आरंभ से ही वह मराठा सरदारों, निजाम और अंग्रेजों के साथ लड़ाई में लगा रहा । उसने 1769 में अंग्रेजी फौजों को बार-बार हराया और मद्रास के पास तक पहुंच गया । वह द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध के दौरान 1782 में मर गया । उसके स्थान पर उसका बेटा टीपू गद्दी पर बैठा ।

टीपू सुल्तान

अंग्रेजों के हाथों 1799 में मारे जाने तक टीपू सुलतान ने मैसूर पर शासन किया । वह जटिल चरित्र वाला और नए विचारों को ढूंढ निकालने वाला व्यक्ति था । समय के साथ अपने को बदलने की उसकी इच्छा के प्रतीक थे एक नए कैलेंडर को लागू करना, सिक्का-ढलाई की नई प्रणाली काम में लाना तथा माप-तौल के नए पैमानों को अपनाना । उसके निजी पुस्तकालय में धर्म, इतिहास, सैन्य विज्ञान, औषधि विज्ञान और गणित जैसे विविध विषयों की पुस्तकें थीं । उसने फ्रांसीसी क्रांति में गहरी दिलचस्पी ली। उसने श्रीरंगपट्टम में 'स्वतंत्रता-वृक्ष' लगाया और एक जैकोबिन क्लब का सदस्य बन गया । उसकी संगठनिक क्षमता का प्रमाण यह है कि जिन दिनों में भारतीय फौजों के बीच अनुशासनहीनता आम थी, उसके सैनिक अंत तक अनुशासित और उसके प्रति वफ़ादार रहे । उसने जागीर देने की प्रथा को खत्म करके राजकीय आय बढ़ाने की कोशिश की । उसने पोलिगारों की पैतृक संपत्ति को कम करने और राज्य तथा किसानों के बीच के मध्यस्थों को समाप्त करने की भी कोशिश की । मगर उसका भू-राजस्व उतना ही ऊंचा था जितना अन्य समसामयिक शासकों का । वह पैदावार का एक-तिहाई हिस्सा तक भू-राजस्व के रूप में लेता था । मगर उसने अब्वाबों की वसूली पर रोक लगा दी । वह भू-राजस्व में छूट देने में उदार था । उसकी पैदल सेना यूरोप की शैली में बंदूकों और संगीनों से लैस थी लेकिन इन हथियारों को मैसूर में ही बनाया गया था । 1796 के बाद उसने एक आधुनिक नौसेना खड़ी करने की भी कोशिश की थी । इसके लिए उसने दो नौका घाट बनवाए थे तथा जहाजों के नमूने उसने स्वयं तैयार कराए थे । अपने व्यक्तिगत जीवन में वह एकदम सादा था, उसे किसी प्रकार का व्यसन नहीं था, विलासिता से वह कोसों दूर था । वह एक दुस्साहसी योद्धा था और अत्यंत प्रतिभाशाली सेनानायक था । उसकी यह अत्यंत प्रिय उक्ति थी कि एक "शेर की तरह एक दिन जीना बेहतर है लेकिन भेड़ की तरह लंबी जिंदगी जीना अच्छा नहीं ।" इसी विश्वास का पालन करते हुए वह श्रीरंगपत्तनम के द्वार पर लड़ता हुआ मरा था । लेकिन हर काम में वह जल्दबाजी करता था और उसका स्वभाव स्थिर नहीं था।

एक राजनीतिज्ञ के रूप में 18वीं सदी के किसी भी शासक की तुलना में वह दक्षिण भारत के लिए या दूसरे भारतीय शासकों के लिए अंग्रेजी राज के

(1) कालीकट
(2) चिरक्कल
(3) कोचीन
(4) त्रावणकोर
(5) रंगनाथ का प्रसिद्ध मंदिर

खतरे को अधिक ठीक तरह से समझता था। उदीयमान अंग्रेजी सत्ता के समक्ष वह दृढ़निश्चयी शत्रु के रूप में खड़ा हुआ था। और अंग्रेज लोग भी भारत में उसको अपना सबसे खतरनाक दुश्मन समझते थे।

हालांकि मैसूर उस जमाने के आर्थिक पिछड़ेपन के दोष से मुक्त तो नहीं था लेकिन हैदर अली और टीपू के राज्यकाल में वह आर्थिक रूप से खूब फला-फूला। यह अधिक स्पष्ट हो जाता है, खास तौर पर जब हम उसकी आर्थिक स्थिति की तुलना निकट अतीत से या उस समय में देश के अन्य भागों से करते हैं। 1799 में ब्रिटिश लोगों ने जब टीपू को पराजित कर उसे मार डाला और मैसूर पर कब्जा कर लिया तो यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ कि मैसूर का किसान ब्रिटिश शासित राज्य मद्रास के किसान की तुलना में कहीं बहुत अधिक संपन्न और खुशहाल था। सर जान शोर 1793-98 के दौरान गवर्नर-जनरल था। उसने बाद में लिखा था, "टीपू के राज्य के किसानों को संरक्षण मिलता था तथा उनको श्रम के लिए प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया जाता था। टीपू सुलतान के जमाने के मैसूर के बारे में एक अन्य ब्रिटिश पर्यवेक्षक ने लिखा था, "यह राज्य, खेतीबाड़ी में बढ़ा-चढ़ा, परिश्रमी लोगों की घनी आबादी वाला, नए" नए नगरों वाला और वाणिज्य व्यापार में बढ़ोतरी वाला था। लगता है कि आधुनिक व्यापार और उद्योग के महत्व को भी टीपू अच्छी तरह समझता था। वास्तव में भारतीय शासकों में वही एकमात्र शासक था जो आर्थिक शक्ति के महत्व को सैनिक शक्ति की नींव मानता था। भारत में आधुनिक उद्योगों की शुरूआत के लिए उसने थोड़े-बहुत प्रयास किए। इसके लिए उसने विदेशों से कारीगर बुलाए और कई उद्योगों को उसने राज्य की ओर से सहायता दी। विदेश व्यापार के विकास के लिए उसने फ्रांस, तुर्की, ईरान और पेगू में दूत भेजे। चीन के साथ भी उसने व्यापार किया। यूरोपीय कंपनियों के ढांचे पर उसने व्यापारिक कंपनी स्थापित करने का प्रयास भी किया और उनकी वाणिज्य संबंधी गतिविधियों की नकल करने की कोशिश की। बंदरगाह वाले नगरों में व्यापारिक संस्थाएं स्थापित करके उसने रूस तथा अरब के साथ व्यापार बढ़ाने का प्रयत्न किया।

कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों ने टीपू को धार्मिक उन्मादी के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि अपने धार्मिक दृष्टिकोण में वह काफी रुढ़िवादी था लेकिन दूसरे धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण काफी सहिष्णु और उदार था। 1791 में मराठा घुड़सवारों ने श्रृंगेरी के शारदा मंदिर को लूटा तो उसने मां शारदा की प्रतिमा बनवाने के लिए पैसे दिए। वह नियमित रूप से इस मंदिर और इसके साथ कुछ और मंदिरों को भेंट दिया करता था। रंगनाथ का प्रसिद्ध मंदिर उसके महल से मुश्किल से 100 गज की दूरी पर था। जहां वह अपनी बहुसंख्यक हिंदू और ईसाई प्रजा के साथ सहनशीलता का बरताव करता था, वह उन हिंदुओं और ईसाइयों के प्रति काफी कठोर था जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मैसूर राज्य के विरुद्ध अंग्रेजों की मदद करते थे।

केरल : अठारहवीं सदी के शुरू में केरल बहुत बड़ी संख्या में सामंत सरदारों और राजाओं में बंटा हुआ था। इनमें से चार प्रमुख राज्य इस प्रकार थे: कालीकट, चिरक्कल, कोचिन और त्रावणकोर। त्रावणकोर राज्य को 1729 के बाद अठारहवीं सदी के एक अग्रणी राजनेता राजा मार्तंड वर्मा के नेतृत्व में प्रमुखता मिली। उसमें विलक्षण दूरदर्शिता तथा दृढ़ संकल्प और साहस तथा निर्भीकता का सामंजस्य था। उसने सामंतों को शांत कर दिया, क्विलोन और इलायादाम को जीत लिया और डच लोगों को हराकर केरल में उनकी राजनीतिक सत्ता खत्म कर दी। उसने यूरोपीय अफसरों की मदद से पश्चिमी माडल के आधार पर एक शक्तिशाली फौज का संगठन किया और उसे आधुनिक हथियारों से सुसज्जित किया। उसने एक आधुनिक शस्त्रागार भी बनाया। मार्तंड वर्मा ने अपनी नई फौज का इस्तेमाल अपना राज्य उत्तर की ओर बढ़ाने के लिए किया। त्रावणकोर की सीमाएं जल्द ही कन्याकुमारी से कोचीन तक फैल गईं। उसने सिंचाई की अनेक व्यवस्थाएं कीं, संचार के लिए सड़कें और नहरें बनाईं तथा विदेश व्यापार को सक्रिय प्रोत्साहन दिया।

केरल के तीन बड़े राज्यों—कोचीन, त्रावणकोर और कालीकट ने 1763 तक सभी छोटे राजवाड़ों को विलीन या अधीन कर लिया। हैदर अली ने केरल पर अपना आक्रमण 1766 में शुरू किया और अंत में कालीकट के जमोरिन के इलाकों सहित कोचीन तक उत्तरी केरल को हड़प लिया।

अठारहवीं सदी में मलयाली साहित्य में एक असाधारण पुनर्जीवन देखा गया। यह अंशतः केरल के राजाओं और सरदारों के कारण हुआ जो साहित्य

फ्रांस, तुर्की, ईरान और पेगू में दूत भेजे

Scanned with CamScanner

के महान संरक्षक थे । अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेंद्रम संस्कृत विद्वता का एक प्रसिद्ध केंद्र बन गया । मार्तंड वर्मा का उत्तराधिकारी राम वर्मा स्वयं कवि, विद्वान, संगीतज्ञ, प्रसिद्ध अभिनेता और सुसंस्कृत व्यक्ति था । वह अंग्रेजी में धाराप्रवाह बातचीत करता था । उसने युरोप के मामलों में गहरी दिलचस्पी ली । वह लंदन, कलकत्ता और मद्रास से निकलने वाले अखबारों और पत्रिकाओं को नियमित रूप में पढ़ता था ।

दिल्ली के इर्द-गिर्द के इलाके

राजपूत राज्य : प्रमुख राजपूत राज्यों ने मुगल सत्ता की बढ़ती हुई कमजोरी का फायदा उठाकर अपने को केंद्रीय नियंत्रण से वस्तुतः स्वतंत्र कर लिया । साथ ही उन्होंने साम्राज्य के शेष भागों में अपना प्रभाव बढ़ाया। फर्रुखसियर और मुहम्मद शाह के शासन काल में आमेर और मारवाड़ के शासकों को आगरा, गुजरात और मालवा जैसे महत्वपूर्ण मुगल प्रांतों का सूबेदार बनाया गया ।

राजपुताना के राज्य पहले की तरह विभाजित रहे । उनमें जो बड़े थे उन्होंने अपने कमजोर पड़ोसियों—राजपूत और गैर-राजपूत दोनों के इलाकों को हथियाकर अपना विस्तार किया । अधिकतर बड़े राजपूत राज्य निरंतर छोटे झगड़ों और गृह-युद्धों में फंसे रहे । इन राज्यों की अंदरुनी राजनीति में उसी प्रकार के भ्रष्टाचार, षड्यंत्र और विश्वासघात का बोलबाला था जैसा मुगल दरबार में था । मारवाड़ के अजीतसिंह को उसके बेटे ने ही मार डाला ।

अठारहवीं सदी का सबसे श्रेष्ठ राजपूत शासक आमेर का सवाई जयसिंह (1681–1743) था । वह एक विख्यात राजनेता, कानून-निर्माता और सुधारक था । परंतु सबसे अधिक, वह विज्ञान-प्रेमी के रूप में चमका । ध्यान रहे कि जिस युग में वह था, उसमें अधिकांश भारतीयों को वैज्ञानिक प्रगति के बारे में कुछ भी पता नहीं था । उसने जाटों से लिए गए इलाके में जयपुर शहर की स्थापना की और उसे विज्ञान और कला का महान केंद्र बना दिया ।

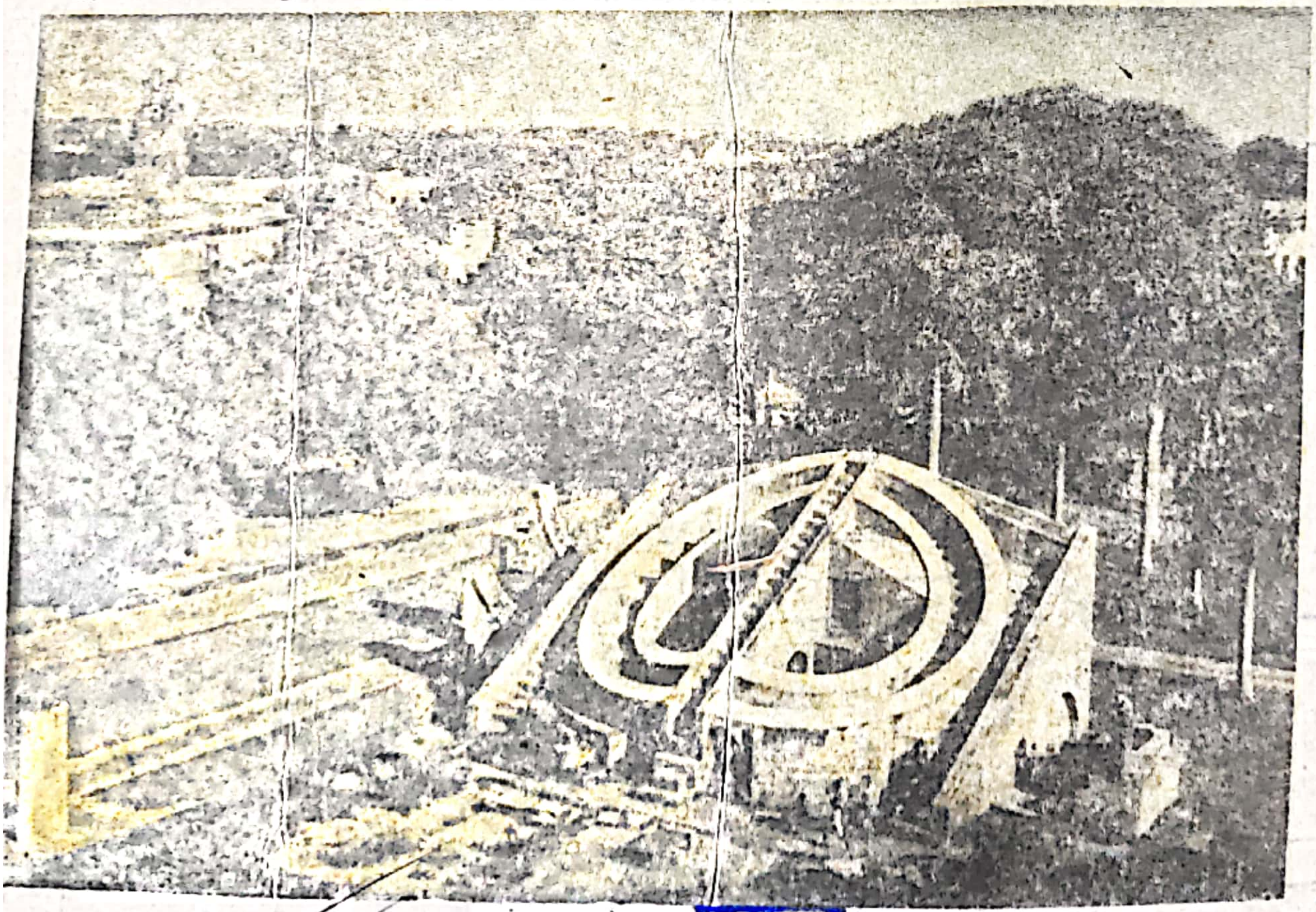

महाराजा सवाई जयसिंह की वेधशाला, जन्तर मन्तर, नई दिल्ली

(1) खगोलशास्त्री
(2) दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और मथुरा 5 — पर्यवेक्षणशालाएं
(3) जाट राज्य भरतपुर — चूड़ामन व बदनसिंह
(4) जिज मुहम्मदशाही — सारणियों का एक सेट — जयसिंह

जयपुर का निर्माण बिलकुल वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर और एक नियमित योजना के तहत हुआ । उसकी चौड़ी सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं ।

जयसिंह की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह एक महान खगोलशास्त्री भी था । उसने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और मथुरा में बिलकुल सही और आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित पर्यवेक्षणशालाएं बनाईं । कुछ उपकरण खुद जयसिंह के बनाए हुए थे । उसके खगोलशास्त्र संबंधी पर्यवेक्षण आश्चर्यजनक रूप से सही होते थे । उसने सारणियों का एक सेट तैयार किया जिससे लोगों को खगोलशास्त्र संबंधी पर्यवेक्षण करने में सहायता मिले । इसका नाम जिज मुहम्मदशाही था । उसने युक्लिड की 'रेखागणित के तत्व' का अनुवाद संस्कृत में कराया । उसने त्रिकोणमिति की बहुत सारी कृतियों और लघुगणकों को बनाने और उनके इस्तेमाल संबंधी नेपियर की रचना का अनुवाद संस्कृत में कराया ।

जयसिंह समाज-सुधारक भी था । उसने एक कानून लागू करने की कोशिश की जिससे लड़की की शादी में किसी राजपूत को अत्यधिक खर्च करने के लिए मजबूर न होना पड़े । लड़की की शादी में भारी खर्च के कारण ही लड़कियों को जन्म लेते ही मार दिया जाता था । इस असाधारण राजा ने जयपुर पर 1699 से 1743 तक, 44 वर्षों तक शासन किया ।

जाट : खेतिहरों की एक जाति जाट है । जाट दिल्ली, आगरा और मथुरा के इर्द-गिर्द के इलाके में रहते थे । मथुरा के आसपास के जाट किसानों ने 1669 और फिर 1688 में अपने जाट जमींदारों के नेतृत्व में विद्रोह किए । विद्रोहों को कुचल दिया गया मगर इलाका अशांत ही रहा । औरंगजेब की मौत के बाद उन्होंने दिल्ली के चारों ओर अशांति पैदा कर दी । जाट-विद्रोह जमींदारों के नेतृत्व में मूलतः कृषक-विद्रोह था मगर जल्द ही वह लूटमार तक सीमित हो गया । उन्होंने गरीब हो या धनी, जागीरदार हो या किसान, हिंदू हो या मुसलमान, सबको लूटा । उन्होंने दिल्ली के दरबारी षड्यंत्रों में सक्रिय हिस्सा लिया । बहुधा अपने फायदे को देखते हुए वे पक्ष बदल देते थे । भरतपुर के जाट राज्य की स्थापना चूड़ामन और बदनसिंह ने की । जाट सत्ता सूरजमल के नेतृत्व में अपनी उच्चतम गरिमा पर पहुंच गई । सूरजमल ने 1756 से 1763 तक शासन किया । वह एक अत्यंत योग्य प्रशासक तथा सैनिक और बड़ा बुद्धिमान राजनेता था । उसने अपना अधि एक बड़े क्षेत्र पर कायम किया जो पूरब में गंगा कर दक्षिण में चंबल तथा पश्चिम में आगरा के सूबे से लेकर उत्तर में दिल्ली के सूबे तक फैला था । उसके राज्य में अन्य जिलों के अलावा आगरा, मथुरा, मेरठ और अलीगढ़ जिले शामिल थे । मुगल राजस्व व्यवस्था को अपनाकर उसने एक स्थायी राज्य की नींव रखने की कोशिश की । एक समसामयिक इतिहासकार ने उसके बारे में निम्नलिखित बातें लिखी हैं:

> यद्यपि वह किसान की पोशाक पहनता था और सिर्फ अपनी ब्रज बोली बोल सकता था, तथापि वह जाट जाति का अफलातून (प्लेटो) था । समझदारी और चतुराई तथा राजस्व और नागरिक मामलों का प्रबंध करने की योग्यता में उसकी बराबरी करने वाला आसफ जाह बहादुर को छोड़कर, हिंदुस्तान के बड़े सामंतों में कोई नहीं था ।

वह 1763 में मर गया । उसके बाद जाट राज्य की अवनति हो गई । वह छोटे जमींदारों के बीच बंट गया जिनमें से अधितर लूटमार पर जिंदा रहने लगे ।

बंगश पठान और रूहेले : एक अफगान दुस्साहसी, मुहम्मद खां बंगश ने फर्रुखाबाद के इर्द-गिर्द के इलाके (अलीगढ़ और कानपुर के बीच के इलाके) पर फर्रुखसियर और मुहम्मद शाह के शासन काल में अपना अधिकार कायम कर लिया । इसी प्रकार नादिर शाह के आक्रमण के बाद प्रशासन के ठप्प हो जाने पर अली मुहम्मद खां ने रूहेलखंड नामक एक राज्य कायम किया । यह राज्य हिमालय की तराई में दक्षिण में गंगा और उत्तर में कुमायूं की पहाड़ियों तक फैला हुआ था । इसकी राजधानी पहले बरेली में आंवला में थी और बाद में रामपुर चली गई । रूहेलों का अवध, दिल्ली और जाटों से लगातार टकराव होता रहा ।

सिख : सिख धर्म को गुरु नानक ने पंद्रहवीं शताब्दी में चलाया । वह पंजाब के जाट किसानों तथा अन्य छोटी जातियों के बीच फैल गया । एक लड़ाकू समुदाय के रूप में सिखों को बदलने का काम गुरु हरगोविंद (1606–1645) ने आरंभ किया । मगर अपने दसवें और आखिर गुरु गोविंद सिंह

(5) युक्लिड की 'रेखा गणित के तत्व' का अनुवाद संस्कृत में कराया
(6) नेपियर की रचना का अनुवाद — संस्कृत में कराया

Scanned with CamScanner

(1666-1708) के नेतृत्व में सिख एक राजनीतिक और फौजी ताकत बने । औरंगजेब की फौजी और पहाड़ी राजाओं के खिलाफ 1699 से लेकर गुरु गोविंद सिंह ने लगातार लड़ाइयां कीं । औरंगजेब के मरने के बाद गुरू गोविंद सिंह ने बहादुर शाह का साथ दिया । उनका ओहदा 5,000 जात और 5,000 सवार वाले सामंत का था । वे बहादुर शाह के साथ दक्कन गए जहां उन्हें एक पठान नौकर ने विश्वासघात कर मार डाला ।

गुरू गोविंद सिंह की मृत्यु के बाद गुरू की परंपरा खत्म हो गई और सिखों का नेतृत्व उनके विश्वासपात्र शिष्य बंदा सिंह के हाथों में चला गया, जो बंदा बहादुर के नाम से चारों ओर विख्यात है । बंदा ने पंजाब के किसानों और नीची जातियों के लोगों को एकजुट किया और मुगल फौज के खिलाफ आठ साल तक जोश-खरोश के साथ गैरबराबरी की लड़ाई चलाई । उसे 1715 में पकड़ लिया गया और कत्ल कर दिया गया । उसकी असफलता के अनेक कारण थे : मुगल शासन अभी भी काफी शक्तिशाली था । पंजाब के संपन्न वर्ग और ऊंची जातियों के लोगों ने उसके विरोधियों का साथ दिया क्योंकि वह नीची जातियों और गांव की गरीब जनता का हिमायती था । अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण वह मुगल विरोधी समस्त ताकतों को एकजुट नहीं कर सका ।

नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों और उनके कारण पंजाब के प्रशासन में हुई गड़बड़ी ने सिखों को फिर से उठ खड़ा होने का मौका दिया । आक्रमणकारियों की फौजों के आगे बढ़ने पर सिखों ने बिना कोई भेदभाव किए सबको लूटा और धन तथा सैनिक शक्ति इकट्ठी की । अब्दाली के पंजाब से वापस जाने के बाद उन्होंने राजनीतिक रिक्तता को भरना आरंभ किया । उन्होंने 1765 और 1800 के बीच पंजाब और जम्मू को अपने अधिकार में कर लिया । सिख 12 मिसलों या संघों में संगठित थे जो सूबे के विभिन्न भागों में काम करते थे । ये मिसल एक दूसरे के साथ पूरी तरह सहयोग करते थे । मूलतः वे समानता के सिद्धांत पर आधारित थे । किसी मिसल के मामलों पर विचार करने और उसके प्रधान तथा अन्य अधिकारियों को चुनने में सभी सदस्य समान रूप से हिस्सा लेते थे । धीरे-धीरे मिसलों का जनतांत्रिक और अकुलीन चरित्र लुप्त हो गया और शक्तिशाली प्रधानों, सामंतों और सरदारों तथा जमींदारों ने उन पर अपना दबदबा कायम कर लिया । भाईचारे की भावना और खालसा की एकता भी लुप्त हो गई क्योंकि प्रधान निरंतर आपस में झगड़ते रहते थे और उन्होंने अपने को स्वतंत्र सरदार घोषित कर दिया था ।

रणजीत सिंह

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब : अठारहवीं सदी के अंत में सुकेरचकिया मिसल के प्रधान रणजीत सिंह ने प्रमुखता प्राप्त कर ली । वह एक ताकतवर और साहसी सैनिक, कुशल प्रशासक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ था । वह जन्मजात नेता था । उसने 1799 में लाहौर और 1802 में अमृतसर पर कब्जा कर लिया । उसने सतलज के पश्चिम के सभी सिख प्रधानों को अपने अधीन कर लिया और पंजाब में अपना राज्य कायम किया । बाद में उसने कश्मीर, पेशावर और मुलतान को भी जीत लिया । पुराने सिख प्रधान बड़े जमींदार और जागीरदार बना दिए गए । उसने मुगलों द्वारा लागू की गई भू-राजस्व की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किए । भू-राजस्व का हिसाब 50 प्रतिशत सकल उत्पादन के आधार पर लगाया गया ।

रणजीत सिंह ने यूरोपीय प्रशिक्षकों की सहायता से यूरोपीय ढर्रे पर एक शक्तिशाली, अनुशासित और

में तोप बनाने के आधुनिक कारखाने — रणजीत सिंह
1) दिवान दीनानाथ — वित्त मंत्री
3) फकीर अजीजुद्दीन —

सुसज्जित फौज तैयार की । उसकी नई फौज केवल सिखों तक ही सीमित नहीं थी । उसने गोरखों, बिहारियों, उड़ियों, पठानों, डोगरों तथा पंजाबी मुसलमानों को भी अपनी फौज में भर्ती किया । उसने लाहौर में तोप बनाने के आधुनिक कारखाने खोले तथा उनमें मुसलमान तोपचियों को काम पर लगाया । कहा जाता है कि उसकी फौज एशिया की दूसरी सबसे अच्छी फौज थी । पहला स्थान अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज का था ।

रणजीत सिंह बखूबी अपने मंत्रियों और अफसरों का चुनाव करता था । उसका दरबार श्रेष्ठ व्यक्तियों से भरा हुआ था । धर्म के मामले में वह सहनशील तथा उदारवादी था । न केवल सिख बल्कि मुसलमान तथा हिंदू संतों को भी वह सम्मान, आदर और संरक्षण देता था । धर्मपरायण सिख होते हुए भी यह कहा जाता है कि "अपने सिंहासन से उतरकर मुसलमान फकीरों के पैरों की धूल अपनी लंबी सफेद दाढ़ी से झाड़ता था।" उसके अनेक महत्वपूर्ण मंत्री और सेनापति मुसलमान और हिंदू थे । उसका सबसे प्रमुख और विश्वासपात्र मंत्री फकीर अजीजुद्दीन था । उसका वित्त मंत्री दीवान दीनानाथ था । वस्तुतः किसी भी दृष्टि से रणजीत सिंह द्वारा शासित पंजाब एक सिख राज्य नहीं था । राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल केवल सिखों के फायदे के लिए नहीं होता था । सिख किसान उतना ही उत्पीड़ित था जितना हिंदू या मुसलमान किसान था । वस्तुतः रणजीत सिंह के अधीन एक राज्य के रूप में पंजाब का ढांचा अठारहवीं शताब्दी के अन्य भारतीय राज्यों की तरह ही था ।

जब 1809 में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को सतलज पार करने से मना कर दिया और नदी के पूरब के सिख राज्यों को अपने संरक्षण में ले लिया तब उसने चुप्पी साध ली क्योंकि उसने महसूस किया कि उसके पास अंग्रेजों का मुकाबला करने की शक्ति नहीं है । इस प्रकार उसने अपने राजनयिक यथार्थवाद और सैनिक शक्ति के जरिए अपने राज्य को अंग्रेजों के अतिक्रमण से बचा लिया । मगर वह विदेशी खतरे को हटा नहीं सका, उसने उस खतरे को अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया । इसलिए उसकी मृत्यु के बाद उसका राज्य जब सत्ता के तीव्र आंतरिक संघर्ष का शिकार हो गया तब अंग्रेज आए और उन्होंने उसे जीत लिया ।

मराठा शक्ति का उत्थान और पतन

पतनोन्मुख मुगल सत्ता को सबसे महत्वपूर्ण चुनौती मराठा राज्य से मिली जो उत्तराधिकारी राज्यों में सबसे शक्तिशाली था । असल में, मुगल साम्राज्य के विघटन से उत्पन्न राजनीतिक रिक्तता को भरने की शक्ति केवल उसी में थी । यही नहीं उसने इस कार्य के लिए जरूरी कई प्रतिभाशाली सेनापतियों और राजनेताओं को पैदा किया था । मगर मराठा सरदारों में एकता नहीं थी, और उनमें एक अखिल भारतीय साम्राज्य बनाने के लिए आवश्यक दृष्टिकोण और कार्यक्रम नहीं था । इसलिए वे मुगलों की जगह लेने में असफल रहे । मगर जब तक उन्होंने मुगल साम्राज्य को खत्म नहीं किया तब तक वे उसके खिलाफ लगातार लड़ाई करते रहे ।

शिवाजी के पोते साहू को औरंगजेब ने 1689 से कैद कर रखा था । औरंगजेब उसके तथा उसकी मां के साथ उनके धर्म, जाति तथा अन्य चीजों का पूरी तरह ख्याल कर बड़ी शिष्टता, इज्जत तथा लिहाज के साथ पेश आया । उसको उम्मीद थी कि शायद साहू के साथ कोई राजनीतिक समझौता हो जाए । साहू को 1707 में औरंगजेब की मौत के बाद रिहा कर दिया गया फिर जल्द ही साहू और कोल्हापुर में रहने वाली उसकी चाची ताराबाई के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया । ताराबाई ने अपने पति राजाराम के मरने के बाद अपने बेटे शिवाजी द्वितीय के नाम में मुगल विरोधी संघर्ष 1700 से चला रखा था । मराठा सरदारों ने सत्ता के लिए संघर्ष करने वालों में से किसी न किसी का पक्ष लेना आरंभ कर दिया । हर मराठा सरदार के पीछे सिपाही थे जो केवल उसी के प्रति निष्ठा रखते थे । उन्होंने इस अवसर का इस्तेमाल सत्ता के लिए संघर्ष करने वाले दोनों पक्षों से मोलभाव करके अपनी शक्ति और प्रभाव को बढ़ाने के लिए किया । उनमें से अनेक ने दक्कन के मुगल नवाबों के साथ मिलकर साजिशें भी कीं । साहू और कोल्हापुर स्थित उसके प्रतिद्वंद्वी के बीच झगड़े के फलस्वरूप मराठा सरकार की एक नई व्यवस्था ने जन्म लिया जिसका नेता राजा साहू का पेशवा बालाजी विश्वनाथ था । इस परिवर्तन के साथ मराठा इतिहास में पेशवा आधिपत्य का दूसरा काल आरंभ हुआ जिसमें मराठा राज्य एक साम्राज्य के रूप में बदल गया ।

बालाजी विश्वनाथ ब्राह्मण था । उसने अपना जीवन एक छोटे राजस्व अधिकारी के रूप में प्रारंभ

Scanned with CamScanner

मराठा शिविर में सैनिकों का बाजार

किया था और धीरे-धीरे बढ़कर एक बड़ा अधिकारी हो गया था । साहू को अपने दुश्मनों को कुचलने के काम में उसने अपनी निष्ठापूर्ण और जरूरी सेवा दी । वह कूटनीति में बेजोड़ था और उसने अनेक बड़े मराठा सरदारों को साहू की ओर कर लिया । साहू ने 1713 में उसे पेशवा या मुख्य-प्रधान बनाया । बालाजी विश्वनाथ ने धीरे-धीरे साहू का और अपना आधिपत्य मराठा सरदारों और अधिकांश महाराष्ट्र पर कायम किया । केवल कोल्हापुर के दक्षिण के इलाके पर राजाराम के वंशजों का शासन रहा । पेशवा ने अपने हाथों में शक्ति का संकेंद्रण कर लिया और अन्य मंत्री तथा सरदार उसके सामने प्रभावहीन हो गए । वस्तुतः वह और उसका बेटा बाजीराव प्रथम ने पेशवा को मराठा साम्राज्य का कार्यकारी प्रधान बना दिया ।

बालाजी विश्वनाथ ने मराठा शक्ति को बढ़ाने के लिए मुगल अधिकारियों के आपसी झगड़ों का पूरा फायदा उठाया । उसने दक्कन का चौथ और सरदेशमुखी देने के लिए जुल्फिकार खां को राजी कर लिया । अंत में उसने सैयद बंधुओं के साथ एक समझौते पर दस्तखत किए । वे सारे इलाके जो पहले शिवाजी के राज्य के हिस्से थे, साहू को वापस कर दिए गए । उसे दक्कन के छः सूबों का चौथ और सरदेशमुखी भी दे दिया गया । बदले में साहू बादशाह की सेवा में 15,000 घुड़सवार सैनिकों को देने, दक्कन में बगावत और लूटमार रोकने तथा 10 लाख रुपयों का सालाना नजराना पेश करने पर राजी हो गया । नाममात्र के लिए ही सही मगर वह पहले ही मुगल आधिपत्य स्वीकार कर चुका था । वह 1714 में औरंगजेब के मकबरे तक पैदल चलकर खुल्दाबाद गया तथा उसके प्रति सम्मान व्यक्त किया । अपने नेतृत्व में एक मराठा फौज लेकर बालाजी विश्वनाथ 1719 में सैयद हुसैन अली खां के साथ दिल्ली गया और फर्रुखसियर का तख्ता पलटने में सैयद बंधुओं की मदद की । दिल्ली में उसने और अन्य मराठा सरदारों ने साम्राज्य की कमजोरी को स्वयं देखा और उनमें अपना प्रभाव-क्षेत्र उत्तर की ओर बढ़ाने की महत्वाकांक्षा ने घर कर लिया ।

दक्कन में चौथ और सरदेशमुखी की कुशल वसूली के लिए बालाजी विश्वनाथ ने मराठा सरदारों को अलग-अलग इलाके सौंपे । मराठा सरदार वसूल की गई रकम का अधिकांश अपने खर्च के लिए रख लेते थे । चौथ और सरदेशमुखी सौंपने की प्रथा ने भी पेशवा को संरक्षण के जरिए अपनी व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाने में सहायता दी । बड़ी संख्या में महत्वाकांक्षी सरदारों ने उसके इर्द-गिर्द जमा होना आरंभ कर दिया । आगे चलकर यही मराठा साम्राज्य की कमजोरी का मुख्य स्रोत सिद्ध हुआ । उस समय तक वतनों और सरंजामों (जागीरों) की प्रणाली ने मराठा सरदारों को शक्तिशाली स्वायत्त और केंद्रीय सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु बना दिया था । उन्होंने अब मुगल साम्राज्य के सुदूर इलाकों में अपना अधिकार जमाना आरंभ कर दिया । वहां वे धीरे-धीरे कमोबेश स्वायत्त सरदारों के रूप में बस गए । इस तरह अपने मूल राज्य के बाहर मराठों

की जीतें मराठा राजा या पेशवा के सीधे अधीन केंद्रीय फौज द्वारा हासिल नहीं की गई बल्कि उन्हें सरदारों की अपनी निजी सेनाओं द्वारा प्राप्त किया गया । जीत के दौरान सरदार बहुधा आपस में टकराते थे । अगर केंद्रीय सरकार उन्हें सख्ती से नियंत्रित करने की कोशिश करती तो वे दुश्मनों से मिल जाने में नहीं हिचकते थे । दुश्मनों में निजाम, मुगल या अंग्रेज कोई भी हो सकते थे ।

बालाजी विश्वनाथ 1720 में मर गया । उसकी जगह पर उसका 20 वर्ष का बेटा बाजीराव प्रथम पेशवा बना । युवा होने के बावजूद बाजीराव एक निर्भीक और प्रतिभावान सेनापति तथा महत्वाकांक्षी और चालाक राजनेता था । उसे "शिवाजी के बाद गुरिल्ला युद्ध का सबसे बड़ा प्रतिपादक" कहा गया है । बाजीराव के नेतृत्व में मराठों ने मुगलों के खिलाफ अनगिनत अभियान चलाए । पहले उन्होंने मुगल अधिकारियों को विशाल इलाकों से चौथ वसूल करने का अधिकार देने और फिर वे इलाके मराठा राज्य को सौंप देने के लिए मजबूर किया । जब 1740 में बाजीराव मरा तब तक मराठों ने मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड के हिस्सों पर अधिकार कर लिया था । इसी काल में मराठों के गायकवाड़, होल्कर, सिंधिया और भोंसले परिवारों ने प्रमुखता प्राप्त की ।

जीवन भर बाजीराव ने दक्कन में निजाम-उल-मुल्क की शक्ति को नियंत्रित करने की कोशिश की । निजाम-उल-मुल्क ने भी पेशवा की सत्ता को कमजोर करने के लिए कोल्हापुर के राजा, मराठा सरदारों और मुगल अधिकारियों से मिलकर लगातार साजिशें कीं । दो बार दोनों लड़ाई के मैदान में मिले और दोनों बार निजाम को मुंह की खानी पड़ी और उसे दक्कन प्रांतों का चौथ और सरदेशमुखी मराठों को देने के लिए मजबूर होना पड़ा ।

बाजीराव ने 1733 में जंजीरा के सिदियों के खिलाफ एक लंबा शक्तिशाली अभियान आरंभ किया और अंततोगत्वा उन्हें मुख्य भूमि से निकाल बाहर कर दिया गया । साथ ही पुर्तगालियों के खिलाफ भी एक अभियान आरंभ किया गया । अंत में सिलसिट और बसई (बस्सीन) पर कब्जा कर लिया गया मगर पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों का अपने इलाकों पर कब्जा बना रहा ।

बाजीराव अप्रैल 1740 में मर गया । बीस सालों की छोटी अवधि में ही उसने मराठा राज्य का चरित्र बदल दिया । वह महाराष्ट्र राज्य को एक साम्राज्य के रूप में बदल गया जिसका प्रसार उत्तर में भी हुआ था । मगर वह साम्राज्य के सुदृढ़ आधार नहीं बना सका । नए इलाकों को जीतकर उन पर कब्जा जमाया गया मगर उनके प्रशासन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । सफल सरदारों की मुख्य दिलचस्पी राजस्व वसूल करने में ही थी ।

बाजीराव का अठारह साल का बेटा बालाजी बाजीराव (जो नाना साहब के नाम से जाना जाता था) पेशवा बना । वह 1740 से 1761 तक पेशवा रहा । वह अपने पिता की तरह ही काबिल था यद्यपि वह कम उद्यमी था । राजा साहू 1849 में मर गया । उसने अपनी वसीयत के जरिए सारा राजकाज पेशवा के हाथों में छोड़ दिया । पेशवा का ओहदा तब तक वंशगत बन गया था और पेश्वा ही राज्य का असली शासक हो गया था । अब वह प्रशासन का अधिकृत प्रधान हो गया । **इस तथ्य के प्रतीक के रूप में वह अपनी सरकार को अपने मुख्यालय पुणे** (पूना) ले गया ।

बालाजी बाजीराव ने अपने पिता का अनुसरण किया और साम्राज्य को विभिन्न दिशाओं में बढ़ाया । उसने मराठा शक्ति को उसके उत्कर्ष पर पहुंचा दिया । मराठों ने सारे भारत को रौंद दिया । मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड पर मराठों का अधिकार मजबूत हो गया । बंगाल पर बार-बार हमला हुआ और 1751 में बंगाल के नवाब को मजबूर होकर उड़ीसा मराठों को देना पड़ा । दक्षिण में मैसूर राज्य और अन्य छोटे रजवाड़ों को नजराना देने के लिए विवश होना पड़ा । निजाम हैदराबाद को 1760 में उदगिर में हरा दिया गया और उसे 62 लाख रुपयों के वार्षिक राजस्व वाले विशाल क्षेत्र को मराठों को सौंप देना पड़ा । उत्तर में जल्द ही मराठे मुगल सत्ता की असल ताकत बन गए । गंगा के दोआब और राजपुताने से होकर वे दिल्ली पहुंचे जहां 1752 में उन्होंने इमाद-उल-मुल्क को वजीर बनने में मदद दी । नया वजीर जल्द ही उनके हाथों की कठपुतली बन गया । दिल्ली से वे पंजाब की ओर मुड़े और अहमद शाह अब्दाली के प्रतिनिधि को निकाल बाहर कर उस पर अधिकार कर लिया । इससे उनका टकराव अफगानिस्तान के बहादुर योद्धा राजा के साथ हुआ जो फिर एक बार, मराठों से बदला लेने के लिए, भारत पर चढ़ आया ।

अब उत्तर भारत पर अधिकार के लिए एक बड़ा टकराव शुरू हुआ । अहमद शाह अब्दाली ने रुहेलखंड के नजीबउद्दौला और अवध के शुजाउद्दौला

Scanned with CamScanner

से तुरंत गठजोड़ कर लिया । वे दोनों मराठा सरदारों के हाथों हार गए थे । आगामी संघर्ष की बड़ी अहमियत को देखकर पेशवा ने अपने नाबालिग बेटे के नेतृत्व में एक शक्तिशाली फौज उत्तर की ओर भेजी । उसका बेटा तो केवल नाम का ही सेनापति था; वास्तविक सेनापति उसका चचेरा भाई सदाशिव राव भाऊ था । इस फौज का एक महत्त्वपूर्ण भाग था यूरोपीय ढंग से संगठित पैदल और तोपखाने की टुकड़ी जिसका नेतृत्व इब्राहीम खां गर्दी कर रहा था । मराठों ने अब उत्तरी शक्तियों में सहायक ढूंढ़ने की कोशिश की । मगर उनके पहले के व्यवहार और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं ने उन सब शक्तियों को नाराज कर दिया था । उन्होंने राजपुताना के राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप किया था और उन पर भारी जुर्माने तथा नजराने लगाए थे । उन्होंने अवध पर बड़े क्षेत्रीय और मौद्रिक दावे किए थे । पंजाब में उनकी कार्रवाइयों ने सिख प्रधानों को नाराज कर दिया था । जिन जाट सरदारों पर भारी जुर्माने लगाए गए थे, उन पर विश्वास नहीं करते थे । इसलिए उन्हें अपने दुश्मनों से ईमाद-उल-मुल्क के कमजोर समर्थन के अलावा अकेले लड़ना पड़ा । यहीं नहीं, बड़े मराठा सेनापति लगातार आपस में झगड़ते रहते थे ।

दोनों फौजों का पानीपत में 14 जनवरी 1761 को एक दूसरे से आमना-सामना हुआ । मराठा फौज के पैर पूरी तरह उखड़ गए । पेशवा का बेटा विश्वास राव, सदाशिव राव भाऊ और अन्य अनगिनत मराठा सेनापति करीब 28,000 सैनिकों के साथ मारे गए । अफगान घुड़सवारों ने भागने वालों का पीछा किया । उन्हें पानीपत क्षेत्र के जाटों, अहीरों और गूजरों ने भी लूटा-खसोटा ।

पेशवा जो अपने चचेरे भाई की मदद के लिए उत्तर की ओर बढ़ रहा था, इस दुःखद खबर को सुनकर हक्का-बक्का हो गया । वह पहले से ही गंभीर रूप से बीमार था । उसका अंत समय जल्द ही आ गया । वह जून 1761 में मर गया ।

पानीपत की हार मराठों के लिए महाविपदा के समान थी । उन्हें अपनी फौज के बेहतरीन आदमियों से हाथ धोना पड़ा और उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा । सबसे बढ़कर, उनकी हार ने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल और दक्षिण भारत में अपनी सत्ता मजबूत करने का मौका दिया । अफगानों को भी अपनी जीत से कोई फायदा नहीं हुआ । वे पंजाब को अपने अधिकार में नहीं रख सके । वस्तुतः पानीपत की तीसरी लड़ाई ने यह फैसला नहीं किया कि भारत पर कौन राज करेगा बल्कि यह तय कर दिया कि भारत पर कौन शासन नहीं करेगा । अतएव इससे भारत में ब्रिटिश सत्ता के उदय का रास्ता साफ हो गया ।

सत्रह वर्षीय माधव राव 1761 में पेशवा बना । वह एक प्रतिभाशाली सैनिक और राजनेता था । ग्यारह सालों की छोटी अवधि में ही उसने मराठा साम्राज्य की खोई हुई किस्मत को वापस लौटा लिया । उसने निजाम को हराया, मैसूर के हैदरअली को नजराना देने के लिए मजबूर किया, तथा रुहेलों को हराकर और राजपूत राज्यों और जाट सरदारों को अधीन लाकर उत्तर भारत पर अपने अधिकार का फ़िर से दावा किया । मराठे 1771 में बादशाह शाह आलम को दिल्ली वापस ले आए । अब बादशाह उनका पेंशनभोगी बन गया । इस प्रकार लगा कि उत्तर भारत मराठों का प्रभुत्व फिर कायम हो गया है ।

किंतु मराठों को एक धक्का फिर लगा । माधव राव 1772 में क्षय रोग से मर गया । अब मराठा साम्राज्य अस्तव्यस्तता की स्थिति में पहुंच गया । पुणे में बालाजी बाजीराव के छोटे भाई रघुनाथ राव और माधव राव के छोटे भाई नारायण राव के बीच सत्ता के लिए संघर्ष हुआ । नारायण राव 1773 में मारा गया । उसकी जगह पर मरणोपरांत जन्मा उसका पुत्र सवाई माधव राव आया । निराश होकर रघुनाथ राव अंग्रेजों के पास चला गया और उनकी मदद से उसने सत्ता हथियाने की कोशिश की । फलस्वरूप पहला आंग्ल-मराठा युद्ध हुआ ।

पेशवा की सत्ता अब कमजोर होने लगी । पुणे में सवाई माधव राव के समर्थकों और रघुनाथ राव के पक्षधरों के बीच लगातार षड्यंत्र चल रहे थे । सवाई माधव राव के समर्थकों का नेता नाना फड़नवीस था । इस बीच बडे मराठा सरदार अपने लिए उत्तर में अर्धस्वतंत्र राज्य कायम करने में लगे थे । वे शायद ही कभी पेशवा के साथ सहयोग करते थे । उनमें सबसे प्रमुख थे, बड़ौदा का गायकवाड़, इंदौर का होल्कर, नागपुर के भौंसले और ग्वालियर का सिंधिया । उन्होंने मुगल प्रशासन के ढर्रे पर नियमित प्रशासन कायम किए थे और उनके पास अपनी अलग फौजें थीं । पेशवा के प्रति उनकी निष्ठा अधिक से अधिक नाम के लिए होती गई । उन्होंने पुणे में

Scanned with CamScanner

आगरा के पास शस्त्र निर्माण के कारखाने — महादजी सिंधिया
महादजी सिंधिया — शाह आलम — पेशवा को नायब-ए-गुनायब

22

रघुनाथ राव

विरोधी गुटों को साथ दिया और मराठा साम्राज्य के दुश्मनों के साथ मिलकर साजिशें कीं ।

उत्तर के मराठा शासकों में सबसे महत्वपूर्ण **महादजी सिंधिया** था । उसने फ्रांसीसी और पुर्तगाली अफसरों और बंदूकधारियों की सहायता से एक शक्तिशाली फौज खड़ी की तथा आगरा के पास शस्त्र निर्माण के कारखाने स्थापित किए । और 1784 में बादशाह शाह आलम को अपने वश में कर लिया । उसके कहने पर बादशाह ने पेशवा को अपना नायब-ए-गुनायब बनवाया । शर्त यह थी कि महादजी पेशवा की ओर से काम करेगा । मगर उसने अपनी शक्ति नाना फड़नवीस के खिलाफ साजिशें करने में लगाई । वह इंदौर के होल्कर का भी बड़ा कटु शत्रु था । वह 1794 में मर गया । नाना फड़नवीस 1800 में मरा । वह और नाना फड़नवीस उन महान सैनिकों और राजनेताओं की परंपरा की आखिरी कड़ी थे जिन्होंने मराठा शक्ति को अठारहवीं सदी में उसके उत्कर्ष पर पहुंचाया था ।

सवाई माधव राव 1795 में मर गया । उसकी जगह रघुनाथ राव के अत्यंत नालायक बेटे बाजीराव द्वितीय ने ली । तब तक अंग्रेजों ने भारत में अपना आधिपत्य के प्रति मराठों की चुनौती खत्म करने का फैसला कर लिया था । अंग्रेजों ने अपनी चतुर कूटनीति के द्वारा आपस में लड़ने वाले मराठा सरदारों को विभाजित कर दिया और दूसरे और तीसरे मराठा युद्ध (क्रमशः 1803–1805 और 1816–1819) में उन्हें हरा दिया । अन्य मराठा राज्यों को बरकरार रहने दिया गया मगर पेशवा वंश को समाप्त कर दिया गया ।

इस प्रकार मुगल साम्राज्य को नियंत्रित करने और देश के बड़े हिस्सों में अपना साम्राज्य स्थापित करने का मराठों का सपना साकार नहीं हो सका । इसका मूल कारण यह था कि मराठा साम्राज्य उसी पतनोन्मुख समाज-व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता था जिसका मुगल साम्राज्य प्रतिनिधि था । दोनों एक ही प्रकार की अंतर्भूत कमजोरियों के शिकार थे । मराठा सरदार बहुत कुछ बाद के मुगल सामंतों की तरह थे, जैसे सरंजामी व्यवस्था जागीर की मुगल प्रणाली के समान थी । जब तक एक केंद्रीय सत्ता और एक सामूहिक शत्रु मुगलों के विरुद्ध पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता थी तब तक वे किसी न किसी तरह एक सूत्रबद्ध रहे । किंतु कोई भी अवसर मिलते ही उन्होंने अपनी स्वायत्तता का दावा करने की कोशिश की ।

चाहे और जो भी हो वे मुगल सामंतों की अपेक्षा कम अनुशासित थे । मराठा सरदारों ने एक नई अर्थव्यवस्था विकसित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया । वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने में असफल रहे । उन्होंने व्यापार और उद्योग में कोई दिलचस्पी नहीं ली । उनकी राजस्व प्रणाली और प्रशासन मुगलों जैसे थे । मुगलों की तरह ही मराठा शासक भी लाचार किसानों से राजस्व वसूल करने में ही मुख्य रूप से दिलचस्पी रखते थे । उदाहरण के लिए, उन्होंने भी आधा कृषि-उत्पादन कर के रूप में लिया । मुगलों के विपरीत वे महाराष्ट्र से बाहर की जनता को सही प्रशासन देने में भी विफल रहे । मुगलों की तुलना में वे भारतीय जनता में निष्ठा की भावना को अधिक मात्रा में नहीं जगा सके । उनका अधिकार क्षेत्र भी केवल बल पर आधारित था । उदीयमान ब्रिटिश सत्ता का मुकाबला मराठे केवल अपने राज्य को एक आधुनिक

Scanned with CamScanner

(23)

द्वितीय मराठा युद्ध — 1803-05

तृतीय मराठा युद्ध — 1816-19

राज्य में रूपांतरित करके ही कर सकते थे । वे ऐसा करने में असफल रहे ।

जनता की सामाजिक-आर्थिक अवस्था

अठारहवीं सदी का भारत पर्याप्त गति से आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक प्रगति नहीं कर सका । राज्य की बढ़ती हुई राजस्व की मांगें, अफसरों के अत्याचार, सामंतों, लगान के ठेकेदारों और जमींदारों की धन लिप्सा और लूट-खसोट, प्रतिद्वंद्वी सेनाओं के आक्रमण और प्रत्याक्रमण और देश में फिरने वाले अनगिनत दुस्साहसिकों की लूटपाट से जन-जीवन बिल्कुल दयनीय हो गया था ।

उन दिनों का भारत विषमताओं का भी देश हो गया था । अत्यंत दरिद्रता, अत्यंत समृद्धि और धन-संपदा साथ-साथ पाई जाती थी । एक तरफ भोगविलास में डूबे धनी और शक्तिशाली सामंत थे तो दूसरी ओर पिछड़े, उत्पीड़ित और दरिद्र किसान थे जो किसी तरह अपना जीवन-निर्वाह कर पाते थे और उन्हें सब प्रकार के अत्याचारों और अन्यायों को सहना पड़ता था । इतना होने पर भी भारतीय जनता का जीवन सब मिला-जुलाकर उतना खराब नहीं था जितना उन्नीसवीं सदी के अंत में सौ वर्षों से अधिक के ब्रिटिश शासन के बाद हुआ ।

अठारहवीं सदी के दौरान भारतीय कृषि तकनीकी रूप से पिछड़ी हुई जड़वत थी । सदियों से उत्पादन के तकनीक ज्यों के त्यों थे । किसान तकनीकी पिछड़ेपन से उत्पादन में होने वाली कमी को पूरा करने के लिए कठिन परिश्रम करता था । वस्तुतः उसने उत्पादन के क्षेत्र में करिश्मे दिखाए । उसे आम तौर से जमीन की कमी का सामना नहीं करना पड़ा । मगर दुर्भाग्यवश, उसे अपने परिश्रम के फल नहीं मिल पाते थे । यद्यपि उसके उत्पादन पर ही शेष समाज निर्भर था, तथापि उसका अपना पारितोषिक अत्यंत अपर्याप्त था । राज्य, जमींदारों, जागीरदारों और लगान के ठेकेदारों ने उससे अधिकतम रकम उगाहने की कोशिश की । यह बात जिस हद तक मुगल राज्य के लिए सही थी उतनी ही हद तक मराठा या सिख सरदारों या मुगल राज्यों के अन्य उत्तराधिकारियों के लिए भी सच थी ।

यद्यपि भारतीय गांव बहुत हद तक स्वावलंबी थे और बाहर से थोड़ा-सा ही आयात करते थे तथा संचार के साधन पिछड़े हुए थे इसके बावजूद देश के अंदर और एशिया और यूरोप के देशों के साथ मुगलों के शासनकाल में बड़े पैमाने पर व्यापार होता था । भारत फारस की खाड़ी के इलाके से मोती, कच्चा रेशम, ऊन, खजूर, मेवे और गुलाब जल; अरब से कहवा, सोना, दवाएं और शहद; चीन से चाय, चीनी, चीनी मिट्टी और रेशम; तिब्बत से सोना, कस्तूरी और ऊनी कपड़ा; सिंगापुर से टिन इंडोनेशियाई द्वीपों से मसाले, इत्र, शराब और चीनी; अफ्रीका से हाथी दांत और दवाएं; और यूरोप से ऊनी कपड़ा, तांबा, लोहा और सीसा जैसी वस्तुएं और कागज का आयात करता था । भारत के निर्यात की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु थी सूती वस्त्र । भारतीय सूती कपड़े अपनी उत्कृष्टता के लिए सारी दुनिया में मशहूर थे और उनकी हर जगह मांग थी । भारत कच्चा रेशम और रेशमी कपड़े, लोहे का सामान, नील, शोरा, अफीम, चावल, गेहूं, चीनी, काली मिर्च और अन्य मसाले, रत्न और औषधियां भी निर्यात करता था ।

चूंकि भारत हस्तशिल्प और कृषि के उत्पादनों में कुल मिलाकर स्वावलंबी था, इसलिए वह बड़े पैमाने पर विदेशी वस्तुओं का आयात नहीं करता था । दूसरी ओर उसके औद्योगिक और कृषि उत्पादनों के लिए विदेशों में नियमित बाजार था, फलस्वरूप उसका निर्यात उसके आयात से अधिक होता था । विदेश व्यापार को चांदी और सोने के आयात द्वारा संतुलित किया जाता था । असल में, भारत बहुमूल्य धातुओं के कुंड के नाम से जाना जाता था ।

अठारहवीं सदी में गैर-उपनिवेशवादी दौर में, भारत में आंतरिक और विदेशी व्यापार की स्थिति के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है । इस विषय पर मुख्य दृष्टिकोण इस प्रकार है : अठारहवीं सदी के दौरान लगातार लड़ाई और अनेक इलाकों में कानून और व्यवस्था भंग हो जाने से देश के आंतरिक व्यापार को हानि पहुंची । अनेक व्यापारिक केन्द्रों को सत्ता के दावेदारों और विदेशी आक्रमणकारियों ने लूट लिया । अनेक व्यापारिक मार्ग डाकुओं के संगठित दलों से भरे हुए थे । व्यापारी और उनके काफिले लगातार लूटे जाते रहे । यहां तक कि दो शाही शहरों, दिल्ली और आगरा के बीच की सड़क भी लुटेरों से सुरक्षित नहीं थी । यही नहीं, स्वायत्त प्रांतीय सरकारों और असंख्य स्थानीय सरदारों के उदय के साथ सीमा शुल्क की चौकियां भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ गईं । हर छोटे-बड़े शासक ने अपने इलाकों में आने वाली या उनसे गुजरने वाली वस्तुओं पर भारी सीमा शुल्क लगाकर अपनी आमदनी बढ़ाने

की कोशिश की । इन सब कारणों का लंबी दूरी वाले व्यापार पर नुकसानदेह असर पड़ा । सामंत ही विलास की वस्तुओं के सबसे बड़े उपभोक्ता थे । विलास की वस्तुओं का ही व्यापार होता था । सामंतों के गरीब होने से आंतरिक व्यापार को भी धक्का लगा । दूसरे इतिहासकारों का मानना है कि राजनीतिक परिवर्तनों तथा आंतरिक व्यापार संबंधी झगड़ों को प्रायः बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया है । विदेश व्यापार पर इसका असर भी जटिल और अलग-अलग तरह का था । जहां समुद्री व्यापार का विस्तार हुआ, वहीं फारस और अफगानिस्तान के रास्ते होने वाला व्यापार अस्त-व्यस्त हो गया ।

जिन राजनीतिक कारकों ने व्यापार को धक्का पहुंचाया उन्होंने शहरी उद्योगों पर भी बुरा प्रभाव डाला । अनेक समृद्ध शहरों, उन्नत उद्योग के केंद्रों को लूट लिया गया और उन्हें नष्ट कर दिया गया । दिल्ली को नादिर शाह ने लूटा और लाहौर, दिल्ली और मथुरा को अहमद शाह अब्दाली ने । आगरा को जाटों ने, सूरत और गुजरात के अन्य शहरों तथा दक्कन को मराठों ने और सरहिंद को सिखों ने लूटा । यह सिलसिला चलता रहा । इसी प्रकार कहीं-कहीं सामंत वर्ग और दरबार की जरूरतों को पूरा करने वाले दस्तकारों को अपने संरक्षकों की धन दौलत में कमी आने के कारण क्षति पहुंची । इससे आगरा और दिल्ली जैसे नगरों का पतन हुआ । आंतरिक और विदेश व्यापार में गिरावट ने भी उन्हें देश के कुछ हिस्सों में धक्का पहुंचाया । इसके बावजूद देश के अन्य भागों में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के क्रिया-कलापों के कारण यूरोप के साथ व्यापार बढ़ने के फलस्वरूप कुछ उद्योगों ने उन्नति की । बहरहाल नए दरबारों और नए सरदारों के आविर्भाव के कारण फैजाबाद, लखनऊ वाराणसी और पटना जैसे नगरों का उदय हुआ । इससे दस्तकारी की हालत में थोड़ा सुधार हुआ ।

फिर भी भारत व्यापक विनिर्माण का देश बना रहा । उस समय भी अपनी दक्षता के कारण भारतीय दस्तकार सारे विश्व में प्रसिद्ध थे । तब भी भारत सूती और रेशमी कपड़े, चीनी, जूट रंग सामग्रियों, खनिज तथा हथियारों, धातु के बर्तनों जैसे धातु के उत्पादनों और शोरा और तेलों का बड़े पैमाने पर उत्पादक था । कपड़ा उद्योग के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे : बंगाल में ढाका और मुर्शिदाबाद; बिहार में पटना; गुजरात में सूरत, अहमदाबाद और भड़ौच; मध्यप्रदेश में चंदेरी; महाराष्ट्र में बुरहानपुर; उत्तरप्रदेश में जौनपुर, बनारस, लखनऊ और आगरा; पंजाब में मुल्तान और लाहौर; आंध्रप्रदेश में मछलीपट्नम, औरंगाबाद, चिकाकोल और विशाखापत्तनम; कर्नाटक में बंगलौर तथा तमिलनाडु में कोयंबतूर और मदुरै । कश्मीर ऊनी वस्त्रों का केंद्र था । महाराष्ट्र, आंध्र और बंगाल में जहाज-निर्माण उद्योग विकसित हुआ था । इस संबंध में भारतीयों की महान दक्षता के बारे में एक अंग्रेज पर्यवेक्षक ने लिखा, "जहाज निर्माण में उन्होंने अंग्रेजों से जितना सीखा उससे अधिक उन्हें पढ़ाया ।" यूरोपीय कंपनियों ने अपने इस्तेमाल के लिए भारत में बने कई जहाज खरीदे ।

असल में, अठारहवीं सदी के प्रारंभ में भारत विश्व-व्यापार और उद्योग के प्रमुख केंद्रों में था । रूस के पीटर महान ने कहा था :

> याद रखो कि भारत का वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और .... जो उस पर पूरा अधिकार कर सकेगा वही यूरोप का अधिनायक होगा ।

एक बार फिर इस मुद्दे पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं कि मुगल साम्राज्य के पतन के कारण और छोटे-छोटे स्वायत्त राज्यों के उठ खड़े होने से पूरे देश में आर्थिक स्थिति में गिरावट आई या भारत के कुछ हिस्सों में व्यापार, कृषि तथा दस्तकारी का उत्पादन फलता-फूलता रहा और दूसरे हिस्से में यह अस्त-व्यस्त हो गया तथा आम तौर पर इसमें गिरावट आई, लेकिन कुल मिलाकर विचार किया जाए तो कोई बहुत अधिक हानि नहीं हुई । मगर सवाल यह नहीं है कि कहीं थोड़ी प्रगति हुई और कहीं थोड़ी अवनति, बल्कि प्रश्न मूलभूत आर्थिक ठहराव का है । जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की गुंजाइश थी तथा आर्थिक जीवन में एक प्रकार की निरंतरता थी, अठारहवीं सदी के दौरान सत्रहवीं सदी के मुकाबले आर्थिक गतिविधियों में कोई बहुत अधिक सुगबुगाहट अथवा उल्लास नजर नहीं आता है । इसके विपरीत निश्चित रूप से ह्रास की प्रवृति दिखाई देती है । साथ ही यह भी सच है कि दस्तकारी और कृषि उत्पादन के क्षेत्र में 18वीं सदी के भारतीय राज्यों में कम आर्थिक विपन्नता थी, जबकि अठारवीं और उन्नीसवीं सदी में भारत के ब्रिटिश उपनिवेश की हालत ज्यादा खराब थी ।

शिक्षा

अठारहवीं सदी के भारत में शिक्षा की पूरी तरह

Scanned with CamScanner

उपेक्षा नहीं की गई । मगर कुल मिलाकर वह त्रुटिपूर्ण थी । वह परंपरागत थी और पश्चिमी दुनिया में हुए द्रुत परिवर्तनों से उसका कोई सम्पर्क नहीं था । वह जो ज्ञान देती थी वह साहित्य, कानून, धर्म, दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्र तक ही सीमित था । उसने भौतिक और प्राकृतिक प्रौद्योगिकी और भूगोल के अध्ययन पर कोई ध्यान नहीं दिया । उसने समाज के तथ्यगत और विवेकपूर्ण अध्ययन से कोई वास्ता नहीं रखा । सभी क्षेत्रों में मौलिक चिंतन को नापसंद किया गया और प्राचीन विद्या पर ही भरोसा किया गया ।

उच्च शिक्षा के केंद्र सारे देश में फैले हुए थे और आम तौर से उनको चलाने के लिए धन नवाब, राजा और धनी जमींदार देते थे । हिंदूओं में उच्च शिक्षा संस्कृत के माध्यम से होती थी और मुख्यतः ब्राह्मणों तक सीमित थी । तत्कालीन राजकीय भाषा होने के कारण फारसी शिक्षा हिंदूओं और मुसलमानों में समान रूप से लोकप्रिय थी ।

प्राथमिक शिक्षा काफी व्यापक थी । हिंदूओं में प्राथमिक शिक्षा शहर और गांव की पाठशालाओं के जरिए दी जाती थी । मुसलमानों में यह काम मस्जिदों में स्थिति मकतबों में मौलवी करते थे । युवा छात्रों को पढ़ने, लिखने, और अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी । यद्यपि प्राथमिक शिक्षा मुख्यतः ब्राह्मण, राजपूत और वैश्य जैसी उच्च जातियों तक ही सीमित थी तथापि छोटी जातियों के भी कई लोग बहुधा उसे प्राप्त कर लेते थे । दिलचस्प बात यह है कि उस समय औसत साक्षरता ब्रिटिश शासन काल की अपेक्षा कम नहीं थी । इतना ही नहीं, 1813 में वारेन हेस्टिंग्ज ने भी लिखा था कि आम तौर पर यूरोप के किसी भी देश के लोगों के मुकाबले भारत के लोग पढ़ने, लिखने और अंकगणित में अधिक प्रतिभाशाली थे । यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का स्तर आधुनिक मानदंडों से अपर्याप्त था, तथापि वह उन दिनों के सीमित उद्देश्यों की दृष्टि से पर्याप्त था । तब शिक्षा का एक अत्यंत आनंददायक पहलू यह था कि समाज में शिक्षकों की काफी प्रतिष्ठा थी । एक खराब बात यह थी कि लडकियों को विरले ही शिक्षा मिलती थी यद्यपि उच्च जातियों की कुछ औरतें पढ़ी-लिखी थीं जिसे एक अपवाद ही कहा जा सकता है ।

सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन

अठारहवीं सदी में सामाजिक जीवन और संस्कृति की खास बातें जड़ता और भूतकाल पर निर्भरता थी । शताब्दियों के दौरान विकसित थोड़ी बहुत सांस्कृतिक एकता के अलावा सारे देश में सांस्कृतिक और सामाजिक ढांचे समरूप नहीं थे । न ही सभी हिंदू और सभी मुसलमान दो भिन्न समाजों में बंटे हुए थे । लोग धर्म, क्षेत्र, कबीले, भाषा और जाति के आधार पर विभाजित थे । इतना ही नहीं, उच्च वर्गों (जो कुल जनसंख्या के अनुपात में बहुत ही कम संख्या में थे) की सामाजिक जिंदगी और संस्कृति अनेक दृष्टियों से निम्न जातियों की जिंदगी और संस्कृति से भिन्न थी ।

जाति हिंदूओं के सामाजिक जीवन की मुख्य विशेषता थी । हिंदू चार वर्णों के अतिरिक्त अनगिनत जातियों में बंटे हुए थे । जातियों का स्वरूप अलग-अलग जगहों में अलग-अलग था । जातिप्रथा ने लोगों का कठोर विभाजन कर रखा था और सामाजिक क्रम में उनके स्थान स्थायी रूप से निश्चित कर दिए थे । ब्राह्मणों के नेतृत्व में उच्च जातियों ने सब समाजिक प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार पर अपना एकाधिकार कायम कर रखा था जाति नियम अत्यंत कठोर थे । अंतर्जातीय विवाहों की मनाही थी । विभिन्न जातियों के लोगों के साथ खाना खाने पर प्रतिबंध थे । कतिपय स्थितियों में उच्च जाति के लोग छोटी जातियों के लोगों का छुआ खाना नहीं खाते थे । बहुधा जातियां ही पेशे को निर्धारित करती थीं, यद्यपि काफी बड़े पैमाने पर अपवाद भी घटित होते थे । मसलन, ब्राह्मण व्यापार में भी संलग्न थे तथा सरकारी सेवाओं में भी थे, कुछ के पास जमींदारी भी थी । इस तरह बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग काफी सफल और आर्थिक रूप से संपन्न थे तथा धन का उपयोग वे उच्च जातियों के लिए निर्धारित कर्मकांड में तथा सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए किया करते थे । इसी तरह देश के कई हिस्सों में जातिगत हैसियत काफी अस्थिर बन गई थी । जाति परिषदें, पंचायतें और जाति के प्रधान जुर्मानों, प्रायश्चित और जाति-निष्कासन के द्वारा जाति के नियमों को सख्ती से लागू करते थे । अठारहवीं सदी के भारत में जाति एक बड़ी विभाजक शक्ति और विघटन का एक बड़ा तत्व थी । उसने बहुधा एक ही गांव या इलाके में रहने वाले हिंदुओं को अनेक अत्यंत छोटे समूहों में बांट रखा था । बेशक, उच्च ओहदे या सत्ता प्राप्त कर किसी भी व्यक्ति के लिए ऊंचा सामाजिक दर्जा हासिल करना संभव था । उदाहरण के लिए, अठारहवीं सदी में

Scanned with CamScanner

होल्कर परिवार ने ऐसा ही किया । ऐसा बहुत अधिक तो नहीं होता था लेकिन कभी-कभी कोई पूरी की पूरी जाति अपने को जाति-क्रम में ऊंचा उठाने में सफल हो जाती थी ।

मुसलमान भी जाति, नस्ल कबीले और दर्जे की दृष्टि से कम विभाजित नहीं थे हालांकि उनके धर्म ने सामाजिक समानता का निर्देश दिया था । धार्मिक मतभेदों के कारण शिया और सुन्नी सामंत यदा-कदा झगड़ते थे । ईरानी, अफगानी, तुरानी और हिंदुस्तानी मुसलमान सामंत और अधिकारी बहुधा एक दूसरे से अलग रहते थे । इस्लाम स्वीकार करने वाले अनेक हिंदू अपनी जाति को नए धर्म में भी ले आए । वे उसकी विशिष्टताओं को व्यवहार में रखते थे यद्यपि वे ऐसा पहले की अपेक्षा कम सख्ती से करते थे । इसके अलावा, शरीफ मुसलमान जिनमें सामंत, विद्वान, मुल्ले और फौजी अफसर शमिल थे, अज्लाफ मुसलमानों या निम्न वर्ग के मुसलमानों को उसी तरह से नीची निगाह से देखते थे जैसे उच्च जाति के हिन्दू नीची जाति के हिंदुओं को देखते थे ।

अठारहवीं सदी के भारत में परिवार की व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी यानी परिवार में वरिष्ठ पुरूष सदस्य का बोलबाला होता था और संपत्ति में दाय भाग सिर्फ पुरूषों को ही मिलता था । परंतु केरल में परिवार मातृप्रधान था । केरल के बाहर औरतों पर पुरूषों का लगभग पूरा नियंत्रण होता था । उनसे आशा की जाती थी कि वे माताओं और पत्नियों की ही भूमिका निभाएं । इन रूपों में उनको काफी आदर-सम्मान दिया जाता था । यहां तक कि युद्ध और अराजकता के समय भी औरतों को विरले तंग किया जाता था । उनके साथ आदरपूर्वक व्यवहार किया जाता था । उन्नीसवीं सदी के आरंभ में एक यूरोपीय पर्यटक ऐब्बे जे. ए. दुबाचे ने टिप्पणी की, "एक हिंदू औरत कहीं भी, यहां तक कि अत्यंत भीड़-भाड़ वाली जगहों में भी, अकेले जा सकती है, और उसे अकर्मण्य आवारा लोगों की ढीठ निगाहों और दिल्लगियों का डर नहीं होता . . . . ऐसा मकान जिसमें केवल औरतें रहती हैं एक ऐसा पवित्र स्थान है जिसकी मर्यादा भंग करने का ख्याल कोई अत्यंत निर्लज्ज लंपट स्वप्न में भी नहीं ला सकता ।" मगर तत्कालीन औरतों का अपना कोई अलग व्यक्तित्व नहीं था । इसका यह मतलब नहीं है कि इसके अपवाद नहीं हुए । अहिल्या बाई ने इंदौर पर 1766 से 1796 तक बड़ी सफलता के साथ शासन किया । अठारहवीं सदी की राजनीति में कई अन्य हिंदू और मुसलमान महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा कीं । उच्च वर्गों की महिलाओं को घर से बाहर काम नहीं करना होता था मगर कृषक औरतें आम तौर से खेतों में काम करती थीं और गरीब वर्गों की औरतें परिवार की आमदनी को पूरा करने के लिए बहुधा अपने घरों से बाहर जाकर काम करती थीं । पर्दा अधिकतर उत्तर भारत के उच्च वर्गों में ही प्रचलित था । दक्षिण भारत में उसका प्रचलन नहीं था ।

लड़के लड़कियों को एक दूसरे के साथ मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था । सभी शादियां परिवार के प्रधान तय करते थे । पुरूषों को एक से अधिक पत्नियां रखने की इजाजत थी, मगर समृद्ध लोगों को छोड़कर पुरूष सामान्यतया एक पत्नी ही रखते थे । दूसरी ओर, एक औरत से आशा रखी जाती थी कि वह अपनी जिंदगी में सिर्फ एक बार ही शादी करेगी । बाल-विवाह प्रथा सारे देश में प्रचलित थी । कभी-कभी बच्चों की शादी केवल तीन या चार वर्षों की उम्र मे कर दी जाती थी ।

उच्च वर्गों में शादियों पर भारी रकम खर्च करने और दुलहन को दहेज देने की कुप्रथा प्रचलित थी । दहेज की कुप्रथा खासकर बंगाल और राजपताना में व्यापक रूप से प्रचलित थी । महाराष्ट्र में उसे कुछ हद तक पेशवा ने प्रभावशाली ढंग से दबा दिया था ।

जाति प्रथा के अतिरिक्त अठारहवीं सदी के भारत की दो बड़ी सामाजिक कुरीतियां थीं—सती प्रथा और विधवाओं की खराब अवस्था । सती प्रथा के अंतर्गत एक विधवा अपने मृत पति के शव के साथ जल मरती थी । यह अधिकतर राजपुताना, बंगाल और उत्तरी भारत के अन्य हिस्सों में प्रचलित थी । सती प्रथा दक्षिण भारत में प्रचलित नहीं थी । मराठों ने उसे बढ़ावा नहीं दिया । राजपुताना और बंगाल में भी सती प्रथा का प्रचलन केवल राजाओं, सरदारों, बड़े जमींदारों और उच्च जातियों की विधवाएं फिर से शादी नहीं कर सकती थीं यद्यपि कुछ क्षेत्रों और कुछ जातियों, उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र के गैर-ब्राह्मणों, जाट और उत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों में विधवा पुनर्विवाह काफी प्रचलित था । हिंदू विधवा की अवस्था आम तौर से दयनीय होती थी । उसके कपड़े, भोजन, आने-जाने आदि पर सब प्रकार के प्रतिबंध होते थे । आम तौर से आशा की जाती थी कि वह सांसारिक सुखों

विधवा पुनर्विवाह — जयसिंह, परशुराम भाऊ
अहिल्या बाई — इंदौर (1766-96)
दहेज — बंगाल, राजपूताना
सती — अकबर, औरंगजेब, जयसिंह

27

सती : अपने पति की चिता पर जलाई जा रही एक स्त्री

को त्याग देगी और अपने पति या भाई के परिवार के सदस्यों की निःस्वार्थ सेवा करेगी । वह अपने ससुराल या मैके में ही रह सकती थी । भारतीय विधवाओं के कठिन और कठोर जीवन को देखकर संवेदनशील बहुधा द्रवित हो जाते थे । **आमेर के राजा सवाई जयसिंह और मराठा सेनापति परशुराम भाऊ ने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देने की कोशिश** की मगर वे असफल रहे ।

अठारहवीं सदी के दौरान सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में दुर्बलता के लक्षण दिखाई पड़े । बेशक, पिछली सदियों से सांस्कृतिक निरंतरता कायम रखी गई · मगर साथ ही भारतीय संस्कृति पूरी तरह परंपरावादी बनी रही । तत्कालीन सांस्कृतिक क्रियाकलापों का खर्च अधिकतर शाही दरबार, शासक और सांमत तथा सरदार वहन करते थे मगर उनकी आर्थिक हालत खराब होने के साथ सांस्कृतिक कार्यों की धीरे-धीरे अवहेलना होने लगी । उन सांस्कृतिक शाखाओं में तेजी से गिरावट आई जो राजाओं, राजकुमारों और सामंतों के संरक्षण पर निर्भर थी । यह बात सबसे अधिक मुगल वास्तु कला और चित्रकारी के लिए सही थी । मुगल शैली के अनेक चित्रकार प्रांतीय दरबारों में चले गए और हैदराबाद, लखनऊ, कश्मीर और पटना में चमके । साथ ही चित्रकारी की नई शैलियों का जन्म हुआ और उन्होंने उपलब्धियां प्राप्त कीं । कांगड़ा और राजपूत शैलियों के चित्रों ने नई तेजस्विता और रूचि प्रदर्शित की । वास्तु कला के क्षेत्र में लखनडऊ का इमामवाड़ा तकनीक की निपुणता, नगर वास्तु कलात्मक रूचि में अपकर्ष, को प्रदर्शित करता है । दूसरी ओर जयपुर शहर और उसकी इमारतें ओजस्विता की निरंतरता के उदाहरण हैं । अठारहवीं सदी में संगीत विकसित होता और फलता-फूलता रहा । इस क्षेत्र में मुहम्मद शाह के शासन काल में महत्वपूर्ण प्रगति हुई ।

लगभग सभी भाषाओं में कविता का जीवन से संबंध टूट गया और वह आलंकारिक, कृत्रिम, यंत्रवत और परंपरागत हो गई । उसकी निराशावादिता ने हताशा और दोषान्वेषण की व्याप्त भावना को प्रदर्शित किया जबकि उसकी विषयवस्तु ने उसके संरक्षकों, सामंती अमीरों और राजाओं के आध्यात्मिक जीवन में गिरावट को व्यक्त किया।

अठारहवीं सदी के साहित्यिक जीवन का एक उल्लेखनीय पहलू था उर्दू भाषा का प्रसार और उर्दू कविता का जोरदार विकास । उर्दू धीरे-धीरे उत्तर भारत के उच्च वर्गों के परस्पर सामाजिक संपर्क का माध्यम बन गई । यद्यपि उर्दू कविता की भी वे ही

Scanned with CamScanner

(1) हीर राँझा ——— वारिस शाह
(2) रिसालो ——— शाह अब्दुल लतीफ
(3) सित्तर काव्य ——— तायुमानवर
(4) मलयालम साहित्य ——— मार्तण्ड वर्मा, राम वर्मा

28

कमजोरियां थीं जो अन्य भारतीय भाषाओं के समसामयिक साहित्य की थीं, उसने मीर, सौदा, नजीर और उन्नीसवीं सदी की महान प्रतिभा मिर्जा गालिब जैसे प्रखर कवियों को पैदा किया ।

इसी प्रकार मलयालम साहित्य में भी पुनर्जीवन देखा गया । यह विशेषकर त्रावणकोर शासकों, मार्तंड वर्मा और राम वर्मा के संरक्षण में हुआ । केरल का एक महान कवि, कुंचन नंबियार इसी समय हुआ । जिसने आम बोलचाल की भाषा में जनप्रिय कविता लिखी । अठारहवीं सदी के केरल में कथाकली साहित्य, नाटक और नृत्य का भी पूर्ण विकास हुआ । अनोखी वास्तु कला और भित्ति चित्रों वाला पद्मनाभन राज-प्रासाद भी अठारहवीं शताब्दी में बनाया गया ।

तायुमानवर (1706–44) तमिल में सित्तर काव्य का एक उत्कृष्ट प्रवर्तक था । अन्य सित्तर कवियों की तरह उसने मंदिर शासन तथा जाति-प्रथा की कुरीतियों का विरोध किया । असम में साहित्य अहम राजाओं के संरक्षण में विकसित हुआ । गुजरात के एक महान गीतकार दयाराम ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान अपनी रचनाएं लिखीं । पंजाबी के मशहूर प्रेम महाकाव्य, हीर रांझा की रचना वारिस शाह ने इसी काल में की । सिंधी साहित्य के लिए अठारहवीं शताब्दी विशाल उपलब्धियों की अवधि थी । इसी दौरान शाह अब्दुल लतीफ ने अपना प्रसिद्ध कविता संग्रह 'रिसालो' रचा । सचल और सामी इस शताब्दी के अन्य महान सिंधी कवि थे ।

भारतीय संस्कृति की मुख्य कमजोरी विज्ञान के क्षेत्र में थी । सारी अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत पश्चिम देशों से विज्ञान और प्रौद्योगिकी (टेक्नॉलोजी) के मामले में काफी पिछड़ा रहा । पिछले दो सौ वर्षों से पश्चिमी यूरोप में एक वैज्ञानिक और आर्थिक क्रांति चल रही थी जिससे आविष्कारों और अनुसंधानों की बाढ़-सी आ गई थी । वैज्ञानिक दृष्टिकोण धीरे-धीरे पाश्चात्य मस्तिष्क पर हावी होता जा रहा था और यूरोपीय दार्शनिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय संस्थानों में क्रांति लाता जा रहा था । दूसरी तरफ भारतीय, जिन्होंने पुराने जमाने में गणित और प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिए थे, कई शताब्दियों से विज्ञान की उपेक्षा करते आ रहे थे । भारतीय मस्तिष्क अब भी परंपरा से बंधा था; सामंत और आम जनता, दोनों, काफी अंधविश्वासी थे । भारतीय करीब-करीब पूरी तरह पश्चिम में प्राप्त वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक उपलब्धियों से अनभिज्ञ थे । यूरोप में चुनौती का जवाब देने में वे असफल रहे ।

अठारहवीं शताब्दी के भारतीय शासकों ने लड़ाई के हथियारों और सैनिक प्रशिक्षण की तकनीकों को छोड़कर किसी भी पश्चिमी चीज में बहुत कम दिलचस्पी दिखाई । टीपू सुलतान को छोड़कर, वे सभी मुगलों और सोलहवीं तथा सत्रहवीं सदी के दूसरे शासकों से विरासत में प्राप्त विचारधारात्मक उपकरणों से संतुष्ट थे । इसमें कोई शक नहीं कि थोड़ी बहुत बौद्धिक हलचल भी थी क्योंकि किसी भी जमाने में सारी जनता और उसकी संस्कृति पूरी तरह स्थिर और जड़ नहीं रहते । प्रौद्योगिकी में थोड़ा बहुत परिवर्तन और विकास तो हो रहा था लेकिन इसकी गति बहुत मंद और क्षेत्र काफी सीमित थे, इसलिए पश्चिमी यूरोप में होने वाले विकास की तुलना में कुल मिलाकर ये नगण्य थे । विज्ञान के क्षेत्र में यह कमजोरी उस समय के अत्यंत विकसित देश द्वारा भारत को पूरी तरह गुलाम बनाए जाने के लिए बहुत दूर तक जिम्मेदार थी ।

सत्ता और संपदा के लिए संघर्ष, आर्थिक पतन, सामाजिक पिछड़ापन और सांस्कृतिक जड़ता ने भारतीय जनता के एक बड़े भाग के चरित्र बल पर गहरा और नुकसानदेह असर डाला । खासकर सामंत अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में बहुत पतित हो गए । निष्ठा, कृतज्ञता और वचनबद्धता के सद्गुण स्वार्थरता की प्रमुखता होने के कारण खत्म हो गए । अनेक सामंत अमानवोचित दुर्गुणों और अत्यधिक विलास के शिकार हो गए । उनमें से अनेक ने अपने ओहदों का फायदा उठाकर घूस लिया । आश्चर्य की बात है कि आम जनता बहुत हद तक भ्रष्ट नहीं हुई थी जनता में ऊंचे दर्जे की व्यक्तिगत ईमानदारी और नैतिकता थी । उदाहरण के लिए, विख्यात ब्रिटिश अधिकारी जान मैल्काम ने 1821 में टिप्पणी की थी :

> मैं किसी अन्य महान जनसंख्या का उदाहरण नहीं जानता, जिसने समान परिस्थितियों में, उथल-पुथल और निरंकुश शासन के इस तरह के काल में इतने सद्गुणों और खूबियों को संजोए रखा हो, जो यहां के अधिकांश देशवासियों में पाई जाती हैं ।

खासकार उसने "चोरी, मदासक्ति और हिंसा जैसे आम दुर्गुणों के अभाव" की प्रशंसा की । इसी प्रकार

Scanned with CamScanner

क्राफर्ड नामक एक अन्य यूरोपीय लेखक ने लिखा :

> नैतिकता के उनके नियम उदार हैं : सत्कार और परोपकार उनमें न केवल जोरदार रूप से भरा पड़ा है बल्कि, मेरा विश्वास है कि उन्हें कहीं भी उतने व्यापक रूप से व्यवहार में नहीं देखा जाता, जितना हिंदुओं में ।

हिंदुओं और मुसलमानों में मित्रतापूर्ण संबंध अठारहवीं सदी के जीवन की एक बड़ी विशेषता थी । यद्यपि तत्कालीन सामंत और सरदार आपस में अनवरत लड़ते रहे, उनकी लड़ाइयां और उनके गठजोड़ विरले ही धर्म के भेदभाव पर आधारित थे । दूसरे शब्दों में उनकी राजनीति मूलतः धर्म-निरपेक्ष थी । असल में देश के अंदर शायद ही सांप्रदायिक कटुता या धार्मिक असहिष्णुता थी । छोटे सभी लोग एक दूसरे के धर्म की इज्जत करते थे और देश में सहिष्णुता, यहां तक कि मेल-जोल की भावना, व्याप्त थी । 'हिंदुओं और मुसलमानों के पारस्परिक संबंध भाईचारे के थे ।' यह कथन विशेषकर गांवों और शहरों की आम जनता के लिए सही था, जो धर्म के भेदभाव का ख्याल किए बिना एक दूसरे के सुख-दुःख में पूरी तरह हिस्सा लेती थी ।

हिंदू और मुसलमान गैर-धार्मिक क्षेत्रों जैसे सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक कार्यों में परस्पर सहयोग करते थे । एक मिश्रित हिंदु-मुस्लिम संस्कृति या समान तौर-तरीकों तथा दृष्टिकोणों का विकास बेरोकटोक जारी रहा । हिंदु लेखकों ने बहुधा फारसी में लिखा और मुसलमान लेखकों ने हिंदी, बंगला और अन्य देशी भाषाओं में लिखा । मुसलमान लेखकों की विषयवस्तु बहुधा हिंदु सामाजिक जीवन और धर्म, जैसे राधा-कृष्ण, सीता-राम और नल-दमयंती होती थी । उर्दू भाषा और साहित्य के विकास ने हिंदुओं और मुसलमानों के संपर्क का नया क्षेत्र प्रस्तुत किया ।

धार्मिक क्षेत्र में भी, हिंदूओं के बीच भक्ति आंदोलन तथा मुसलमानों में सूफी मत के प्रसार के फलस्वरूप पिछली कुछ शताब्दियों से जो पारस्परिक प्रभाव और सम्मान की भावना विकसित हो रही थी, वह बढ़ती रही । बड़ी संख्या में हिंदू मुसलमान सिद्धों की पूजा करते थे और अनेक मुसलमान भी हिंदू देवताओं और संतों के प्रति समान श्रद्धा रखते थे । मुसलमान शासक सामत और जनसाधारण ने खुशी से हिंदू त्योहारों जैसे होली, दिवाली और दुर्गा पूजा में भाग लिया । इसी तरह हिंदुओं ने मुहर्रम के जुलूसों में हिस्सा लिया । हिंदू अधिकारी तथा जमींदार दूसरे मुस्लिम त्योहारों में आगे रहते थे । अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के पवित्र स्थान की वित्तीय मदद मराठा लोग भी किया करते थे । नागौर के शेख शाहुल हामिद के पवित्र स्थान की मदद तंजौर के राजा किया करते थे । हम पहले देख चुके है कि टीपू श्रृंगेरी के मंदिर तथा अन्य मंदिरों को भी आर्थिक मदद दिया करता था । यह उल्लेखनीय बात है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के सबसे महान भारतीय राजा राममोहन राय हिंदू और इस्लामी दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धांतों से समान रूप में प्रभावित थे ।

इस बात पर भी गौर किया जाना चाहिए कि धर्मिक संबद्धता ही सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में अलगाव का मुख्य मुद्धा नहीं थी । हिंदू और मुस्लिम उच्च वर्गों के जीवन के तौर-तरीके जितने समान थे उतने हिंदू उच्च वर्ग और निम्न तथा मुस्लिम उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के नहीं थे । इसी तरह, क्षेत्र या इलाके अलगाव के मुद्दे बनते थे । एक क्षेत्र के लोगों के बीच धर्म भिन्न होने पर भी जितनी सांस्कृतिक एकता थी उतनी अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले एक धर्म के लोगों के बीच नहीं थी । गांवों में रहने वाले लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का ढर्रा शहरी लोगों से अलग था ।

(1) नायुमानवर — तमिल में सिल्ल काव्य का एक उत्कृष्ट प्रवर्तक था ।
(2) दयाराम —— गुजरात
(3) सचल व सामि —— सिंधी कवि

मैसूर – आंग्ल युद्ध — ट्रावनकोर के राजा

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों की व्याख्या कीजिए :
   मनसब, खालिस भूमि, मिसल, चौथ, सरंजामी व्यवस्था, जमींदार, सरदेशमुखी, जागीरदार,
2. उन प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण मुगल साम्राज्य दिल्ली के आसपास के इलाकों तक सिमटकर रह गया ।
3. अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत की राजनीतिक परिस्थिति की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए । देश की अर्थव्यवस्था पर राजनीतिक परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ा ?
4. बंगाल के नवाबों की आर्थिक और राजनीतिक नीतियों का वर्णन कीजिए ।
5. टीपू सुल्तान की चारित्रिक विशेषताओं और उपलब्धियों का आकलन कीजिए ।
6. अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पंजाब में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हुई । जिन परिस्थितियों के कारण यह साम्राज्य अस्तित्व में आया, उनका विवेचन कीजिए ।
7. प्रथम तीन पेशवाओं के अंतर्गत मराठा शक्ति के विस्तार का वर्णन कीजिए । एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना में मराठा लोगों की असफलता के कारणों का विवेचन कीजिए ।
8. अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित देशी शिक्षा व्यवस्था के विश्लेषण कीजिए ।
9. अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति का वर्णन कीजिए ।
10. अठारहवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए । इस दृष्टिकोण का विवेचन कीजिए कि इस काल में भारतीय समाज जड़ हो गया था ।
11. अठारहवीं शताब्दी में भारत में मुख्य रूप से किन क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास हुए । उनकी मुख्य कमजोरियों का विवेचन कीजिए ।
12. अठारहवीं सदी में भारत के विभिन्न समुदायों के आपसी संबंधों का विवेचन कीजिए । किस हद तक धार्मिक विचारों ने राजनीतिक घटनाओं को प्रभावित किया ।
13. भारत के मानचित्र में अठारहवीं सदी के मध्य के प्रमुख राज्यों को दर्शाओ। मानचित्र में उद्योग के केंद्रों को भी अंकित करो ।

(1) प्रथम आंग्ल मैसूर — 1767-69 — स्मिथ
(2) द्वितीय मैसूर — 1780-84 — हेस्टिंग्स
मंगलौर — 1784 — टीपू
(3) तीसरा मैसूर 1790-92 — कार्नवालिस — ट्रावनकोर के राजा
श्रीरंगपटनम — 1792
(4) चौथा मैसूर — 1799 — वेलेजली
वेल्लोर में कैद
* वडियार वंश का एक बालक राजा बना

स्मिथ → हेस्टिंग्स → कार्नवालिस → वेलेजली